इस अंक में खास

● विचार और मनोरंजन की जुगलबंदी ● रंग हबीब ● यूरोप में चरणदासचोर ● सम्मानित हुई गुलदी ● रंग आधार नाट्य समारोह ● दृश्य छवियों में बंधा भक्ति संगीत ● हमीं से रौशन दुनिया ● संजा संगीत ● 'कोना धरती का' और 'इस अ-कवि समय में' ● रंगभूमि पर रौशन हुईं कवितायें ● याद रह गई मुलाकातें ● सच्ची हमकदम थीं मोनिका ● सादगी ने ही 'बाबा' को महान बनाया ● ...और छलक उठे निर्मलकर

रंग संवाद

जनवरी-मार्च 2010

वनमाली सृजन पीठ (भोपाल) का त्रैमासिक संवाद पत्र

प्रधान संपादक

संतोष चौबे

संपादक

विनय उपाध्याय

संपादक मंडल

राजेश जोशी, राम प्रकाश, महेन्द्र गगन, मुकेश वर्मा, राकेश सेठी

मुख्य तथा अंतिम आवरण चित्र : सौरभ अग्रवाल
भीतर के छायाचित्र : सौरभ अग्रवाल, प्रवीण दीक्षित, शान बहादुर, विजय रोहतगी तथा ताज़

संपादकीय संपर्क :
वनमाली स्मृति सृजन पीठ,
22, E-7, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462016
फोन : 0755-2423806, मोबाइल : 9826392428
ई-मेल : vanmalisrijanpeeth@gmail.com

वनमाली सृजन पीठ, भोपाल द्वारा प्रकाशित।
मुद्रक - पहले पहल प्रिंटरी, 25-ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, भोपाल

बात से बात चले...

साहित्य और कलाओं के अन्तर्संबंधों की बुनियाद में सदा से एक सृजनात्मक बेचैनी रही है। वो अकुलाहट जो नया, अनूठा और बहुरंगी रचना चाहती है। हमारा समूचा सांस्कृतिक परिवेश इसी कलात्मक विविधता, सौन्दर्य बोध और अपार आनंद से सराबोर है। जरा गौर से पड़ताल करें तो एक विधा से दूसरी विधा गुपचुप संवाद करती प्रतीत होती है। कहीं कोई कविता, कोई छंद, सुर-ताल से हमजोली कर रहा है, कहीं देह की भाषा उसके मर्म को नृत्य में अभिव्यक्त कर रही है, कहीं कोई कथा-उपन्यास और नाटक रंगमंच पर अभिनय की छवियों में साकार हो रहे हैं तो रंग-रेखाओं और मूर्ति-शिल्पों में कोई भावमय लगन जीवन के देख-अनदेखे दृश्यों को उकेर रही है। खेत-खलिहानों से लेकर गाँव की चौपाल और छोटे कस्बों और शहरों से लेकर राजधानियों और महानगरों तक कलात्मक कौतुहल की ये बानगियाँ देखी जा सकती हैं। आपाधापी भरी बोझिल और बेस्वाद होती जा रही दुनिया आखिर थक-हार कर संस्कृति की छाँव में ही सुस्ताना चाहती है। वनमाली सृजन पीठ इसी राग, रस से भरे सांस्कृतिक बहुरंगों से एक रिश्ता बनाने की पहल कर रही है। यह एक तरह का 'रंग संवाद' है जिसमें हमारे समय की प्रदर्शनकारी कलाओं के आसपास उभरती आवाजों और उमड़ती उमंगों को थाम कर आप तक पहुँचाने तथा उसमें आपको भागीदार बनाने की मंशा है।

वनमाली सृजन पीठ एक प्रतिष्ठित साहित्यिक, सांस्कृतिक, रचनाधर्मी अनुष्ठान है जो परंपरा और आधुनिक आग्रहों के बीच संवाद के लिए सतत सक्रिय है। साहित्य तथा कलाओं की विभिन्न विधाओं में हो रही सर्जना को प्रस्तुत करने के साथ ही उसके प्रति लोकरुचि का सम्मानजनक परिवेश निर्मित करना भी पीठ की प्रवृत्तियों में शामिल रहा है। अपनी इस आकांक्षा को अभियान की शक्ल देते हुए 'वनमाली' ने विगत वर्षों में कई आयोजन किए हैं। प्रसन्नता है कि इन गतिविधियों के ज़रिए अन्तरविधायी विमर्श संभव हुआ। नवोन्मेषी प्रयासों और सृजनशील प्रतिभाओं को चिन्हित करने तथा अभिव्यक्ति के अवसर उपलब्ध कराने का एक नया क्षितिज 'वनमाली' ने तैयार किया है।

संयोग से 'रंग संवाद' का यह अंक 'रंग आधार नाट्य समारोह' के अवसर पर प्रकाशित हुआ है, जिसे वनमाली सृजनपीठ ने अपना मानकर सहयोग दिया है। इस अंक में ग्यारहवें रंग आधार नाट्य उत्सव की विस्तृत रपट के साथ ही दिवंगत मूर्धन्य रंगकर्मी हबीब तनवीर की जगत ख्यात रंगकृति 'चरणदास चोर' की स्मृति, मौजूदा नाट्य परिवेश की पड़ताल करते आलेख और हाल ही पद्मश्री से विभूषित बैले कलाकार गुलवर्धन के प्रति शुभकामना संजोई है।

उम्मीद है 'रंग संवाद' से आप रागात्मक रिश्ता बनाए रखेंगे।

-संतोष चौबे

विचार और मनोरंजन की जुगलबंदी

विनय उपाध्याय

दौर मीडिया की महिमा का है। होड़ का है। रिझाने का है। वर्चस्व का है और इन सबके केन्द्र में है जनता। समाज से रिश्ता बनाने और उसे अपने समय, जीवन और तमाम सरोकारों के प्रति सजग संवादी बनाए रखने के अनेक नए इजाद हो चुके जरियों पर आज लंबी जिरह की गुंजाइश है, ऐसे में नाटक या रंगमंच जैसे अत्यंत आदिम या पारम्परिक माध्यम की उपयोगिता को या उसकी भूमिका को अथवा उसकी बनती-बिगड़ती या बदलती तस्वीर पर भी विमर्श की जगह तो बनती ही है। तमाम सवाल उठाने से पहले यह मानना तो लाजिमी ही है कि समाज से सीधे आँख मिलाकर बात करने का एकमात्र माध्यम नाटक ही है जिसे तत्काल समाज अपनी प्रतिक्रिया भी लौटाता है। नाटक दुनिया का दर्पण है जिसमें हमारे समय के गुण दोषों के अक्स साफतौर पर झिलमिलाते हैं। ऐसा ईमानदार आईना जो सच्ची राहों पर चलना सिखाता है। यही खासियत उसे दुनिया से जोड़ती है और जिम्मेदार भी बनाती है। तभी तो हमने अपने समय में रवीन्द्रनाथ टैगोर से लेकर पु.ल. देशपाण्डे, विजय तेंदुलकर, बादल सरकार, इब्राहिम अल्फाजी, सफदर हाशमी, हबीब तनवीर, ब.व. कारंत, नीलम मानसिंह चौधरी, छाया गांगुली, रतन थियाम और एम.के. रैना जैसे जीवट और जुझारू रंगकर्मियों को विश्व रंगमंच पर स्थापित होते देखा जिन्होंने नाटक को मनोरंजन के साथ जनजागृति के बेहतर जरिए के बतौर इस्तेमाल करते हुए रंगभूमि पर अपनी शिनाख्त कायम की।

दरअसल जीवन और रंगमंच एकदूसरे के पर्याय हैं और दोनों को ही दृश्य तथा भाषा की परिधियों में सिमटकर समझने की दरकार सदा से रही है। यही वजह है कि समाज को रंगमंच की और रंगमंच को समाज की जरूरत बनी रहती है। यह अनटूटी और आत्मीय परस्परता ही दोनों के अस्तित्व को बचाए हुए है। तमाम जद्दोजहद के, जिद और जिजीविषा बाकी है। दरअसल रंगमंच का क्षेत्र, उसकी व्याप्ति और प्रभाव बड़ी ही सघन और गहरी पैठ लिए होते हैं। वह व्यक्ति के समूचे जीवन को, उसकी कार्यवाहियों को, आँसू और मुस्कुराहटों को अपने समय की तमाम हलचलों को स्थान तथा समय की स्वाधीन चेतना के बीच घेरता है। प्रेक्षकों के बीच स्वभाविक अंतर्क्रिया की संभावना टटोलता है। रंगमंच के खुले फलक पर नाटक अपनी इसी शक्ति के कारण सदा प्राणवान बना रहा है।

अत्युक्ति नहीं कि दुनिया में जो कुछ भी घट रहा है, नाटक के दायरे से बाहर नहीं, इसीलिए संसार को एक सूत्र में बांधने की कुव्वत नाटक में है। वहाँ विचार और कला के लेन देन का खुला व्यापार है। उसकी इसी लोकतांत्रिक ताकत का तकाजा है कि वह (नाटक) एकांतिक साधना में भरोसा नहीं करता। समूह में उसका विचार अँखुआता है, समूह में खिलता है और समूह को ही समर्पित होता है।

कालिदास ने नाटक को 'चाक्षुष यज्ञ' कहा है। आँख जो देखती है, शब्द उसका अनुमोदन करते हैं और इस प्रकार नाटक का शाब्दिक रूप और रंगमंच पर गढ़ा स्थूल बिंब जीवन की एक जीती जागती तस्वीर प्रस्तुत करता है। इसी दिलचस्पी के साथ जुड़े होते हैं नेपथ्य से लेकर मंच तक कई प्रगट और ओझल किरदार जिनकी प्रतिभा, पुरुषार्थ और परिश्रम से नाटक अंततः एक जीवंत तस्वीर और तासीर में तब्दील होता है।

इस विपरीत समय में जब रुपहले परदे की रंगत, टीवी, चैनलों की झिलमिल और तमाम तकनीकी सेटेलाइट उपकरणों की सरसराहट ने हमारी संवेदनाओं को अपनी मुट्ठी में कैद कर लिया हो। पल भर में 'जहाँ हो, जैसे हो' की हालात में हथेली पर मनमाफिक अवतरित करने की दावेदारी की हो, तब रात दिन रेशा-रेशा खटते हुए पथरीली राहों से गुजरकर रंगकर्म का दुःस्वप्न देखने की फितरत बेमानी लग सकती है, लेकिन कुरुचि के कोलाहल में सुरुचि का सरगम कभी दबा-मंदा जरूर लगे पर वह पूरी तरह काफूर नहीं हुआ। उत्तर आधुनिकता के चंगुल से उसने अपना दामन काफी हद तक बचाए रखा है और नई चुनौतियों से आँख मिलाते हुए उसके कदम आगे बढ़ रहे हैं। कारंतजी ठीक कहते थे- 'नाटक कभी मरता नहीं, कभी-कभी सो जरूर जाता है।' सवाल ये है कि जनता का यह सबसे प्रिय माध्यम आज अपनी जमीन पर कितना सजग, प्रतिबद्ध और दायित्व से भरा रह गया है?

जब रुपहले परदे की रंगत, टीवी चैनलों की झिलमिल और तमाम तकनीकी सेटेलाइट उपकरणों की सरसराहट ने हमारी संवेदनाओं को अपनी मुट्ठी में कैद कर लिया हो। पल भर में 'जहाँ हो, जैसे हो' की हालात में हथेली पर मनमाफिक अवतरित करने की दावेदारी हो, तब रात-दिन रेशा-रेशा खटते हुए रंगकर्म का दुःस्वप्न देखने की फितरत बेमानी लग सकती है, लेकिन कुरुचि के कोलाहल में सुरुचि का सरगम कभी दबा मंदा जरूर लगे पर वह पूरी तरह काफूर नहीं हुआ।

थोड़ा पीछे जाकर पड़ताल करें भारतीय नाट्य सृजन और उनके मंचन की परम्परा से हमारा जीवन दर्शन जुदा नहीं है। हमारे जीवन का सौन्दर्य बोध और लीला का संसार पूरी तरह रंगमंच पर मुखरित होता रहा है। भारतीय रंग परंपरा में यह तत्व आज भी बुनियादी खासियत बना हुआ है। नाट्य शास्त्र के रचयिता आचार्य भरतमुनि ने नाट्य को कलाओं की समग्रता कहा है। संस्कृत नाटक और उनके प्रदर्शन की परम्परा से लेकर आज वैश्विक प्रभावों के साथ मंचित हो रहे आधुनिक भारतीय नाटकों के प्रयोग तक कलाओं की रचनात्मक नातेदारी या कहें जरूरी लेन-देन का लक्ष्य है कि नाटक की कसौटी अंततः उसका मंचन है जो सीधे जनता के बीच जाकर उसकी आवाज में आवाज मिलाता है। एक ऐसा माध्यम जो कलाकारों के लिए इम्तहान है और उसके सैकड़ों, हजारों, लाखों परीक्षक हैं। जाहिर है कि उसकी साज संवर और अभिव्यक्ति के मानक लोक की अदालत में ही तय होते रहे हैं, लेकिन दुर्भाग्य से भारतीय रंग सर्जना से आज उसका लोक पूरी तरह जुड़ नहीं पाया है। जितना प्रभावी यह माध्यम है, उतनी पैठ नाटक अपने समाज में बना नहीं पाया है मराठी, बांग्ला और कुछ हद तक दक्षिण को भी शामिल करें तो इनकी तुलना में हिन्दी रंगमंच बेहद पिछड़ा और सर्जना के स्तर पर उदासीन दिखाई देता है। दर्शकों को बहुत नियमित और गुणवत्तापूर्ण नाटक देने की कोशिशों पर पाला पड़ गया है। नए रंगकर्मियों की आमद सिर्फ नाटक को सीढ़ी बनाकर सिनेमा और टीवी के सपने पूरे करने तक सिमट गई है। नाटक या तो प्रोजेक्ट ओरिएंटेड हो गए हैं या राजनीति की भाषा बोलने लगे हैं ऐसे में जनता का विश्वास और जल्दीबाजी में हुए रंगकर्म से सृजन का सुवास दोनों ही काफूर हो रहे हैं।

हमें इस बात पर गौर करने की जरूरत है कि हिन्दी समाज अधिकांशतः लोकप्रिय माध्यमों में जीने वाला समाज है। हिन्दी फिल्में हिन्दी समाज को अपने मनोरंजन की गिरफ्त में लिए हैं। ग्रामीण और कस्बाई क्षेत्रों में अभी भी पारम्परिक कलारूप और लीला के विविध रूपों की ही प्रतिष्ठा है। देश के अनेक क्षेत्रों से मंडलियाँ आकर छोटे शहरों, कस्बों और गाँवों में लीला प्रदर्शन करती है। पारम्परिक लोकनाट्यों के प्रदर्शनों में भी लोक समाज की गहरी रुचि है। ये जीवंत कला परंपरा है। इन कलारूपों तथा इनसे जुड़े कलाकारों का भी बहुत सम्मान है। विडंबना आधुनिक रंगकर्म की है, जो शहरी क्षेत्र है या महानगर है, रंग आन्दोलन यहीं तक सीमित हैं। दूसरा आधुनिक रंगकर्म का कोई रिश्ता अभी भी आधुनिक समाज से बन नहीं पाया है। ऐसी स्थिति में रंगमंच को सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए लम्बी यात्रा करनी होगी।

लेखकों, निर्देशकों और अभिनेताओं को मिलकर जनता का रूह में बसी उस सच्ची रसिकता को टोह लेने की दरकार है जो उसे बार-बार नाटकों के करीब लाने को सोत्साह विवश करे। यहाँ राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली के पूर्व निदेशक और प्रख्यात रंगकर्मी रामगोपाल बजाज की चिंता मौजू लगती है। एक साक्षात्कार में उन्होंने मुझसे कहा था- 'आजादी के साठ बरस बाद भी नाटक जैसा सर्वाधिक जनतांत्रिक माध्यम सरकारों की आँख नहीं चढ़ सका। नाट्य विद्यालय खोलने से क्या होगा अगर कलाकारों के भविष्य का पुख्ता इंतजाम हमने नहीं किया। इधर खेल गाँव बस जाते हैं, फिल्म पुरस्कारों की राशि बढ़ जाती है और रंगमंडलों की बहाली का सपना सुनहरे वादों के बीच दफन हो जाता है।'

फिर भी नाटक जीवित है। कलाकारों के भीतर कसक बाकी है जो उसे चैन से बैठने नहीं देती। अपने सपनों से उलझने और जीवन के शाश्वत सवालों के जवाब आखिरकार नाटक में ही मुमकिन है।

विश्व रंगमंच दिवस `27 मार्च' के निमित्त भारत भवन में चल रहे बारह दिवसीय 'रंगआधार नाट्य समारोह' की वह आखिरी शाम थी। तारीख थी वर्ष 2009 की 7 अप्रैल। अंतरंग में हबीब तनवीर का क्लासिक नाटक 'चरणदास चोर' का प्रदर्शन चल रहा था। वह शाम सिर्फ इसलिए स्मरणीय नहीं थी कि वहाँ चर्चित नाटककार, अदाकार और निर्देशक हबीब तनवीर के क्लासिक नाटक का प्रदर्शन था, शाम इसलिए भी यादगार बन पड़ी कि भोपाल के रंगमंचीय इतिहास में दशकों का ऐसा हुजूम शायद ही पहले दिखाई दिया हो। रंगशाला दर्शकों से खचाखच भरी थी। रंगशाला के बाहर बड़ा स्क्रीन लगा था और उसके सामने भी सैकड़ों नाटक प्रेमी बैठकर हबीब तनवीर की कृति 'चरणदास चोर' निहार रहे थे। जितने लोग रंगशाला में तथा स्क्रीन के सामने बैठे थे, कमोबेश उतने ही दर्शक जगह न मिलने की वजह से वापस चले गए थे।

याददाश्त की परतों में तनवीर

राकेश सेठी

हबीब तनवीर के नाटकों को दर्शकों का आत्मीय प्रेम उन्हें क्यों मिला? कला मर्मज्ञ इसकी अलग-अलग वजह तलाशते नजर आते हैं। मसलन, नाट्य विशेषज्ञ राधावल्लभ त्रिपाठी मानते हैं कि हबीब तनवीर के रंगमंच में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल रुपायित होते हैं। यह आकलन सटीक भी है। 'मृच्छकटिक', 'मुद्रारक्षस', 'जिन लाहौर नई देख्या'' 'आगरा बाजार' आदि नाटक देखकर यह अनुभव किया जा सकता है। इसी बात को कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल कुछ दूसरे अंदाज में कहते हैं। वे मानते हैं कि हबीब तनवीर की कला में स्वयं उनकी और कला की आवाजों का संगम अनूठा और आत्मीय बन पड़ा है। दरअसल, नाट्य कला को लेकर खुद हबीब तनवीर के मन में गहरा आदर भाव रहा है। वे इस तथ्य को गहरे तक समझते थे कि नाटक अकेली ऐसी विधा है जिसमें सामाजिक अर्थवत्ता अपने भाव बोध के साथ प्रकट रूप में व्यक्त होती है। शायद इसलिए ही उनके नाटकों में जीवन का सौंदर्य और सत्य अपने पूरे आवेग के साथ प्रकट होता दिखता है।

सत्तासी वर्ष की आयु में इसी साल आठ जून को हबीब तनवीर इस दुनिया से कूच कर गए। उनकी मौजूदगी में रंगआधार नाट्य समारोह में खेला गया 'चरणदास चोर' उनका अंतिम नाटक बन गया। 'चरणदास चोर' के वे अनेकानेक प्रदर्शन कर चुके हैं। बावजूद इसके, सात अप्रैल को वे कलाकारों के साथ घंटों नाटक की रिहर्सल करते रहे। यह तथ्य महत्वपूर्ण है और नाटक के प्रति उनकी गंभीरता को दर्शाता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि उम्र के इस पड़ाव में भी वे थके नहीं थे। हालाँकि वे कहते थे मेरे पास काम बहुत हैं और समय कम है। रंगमंच के प्रति उनमें गहरी चाहत देखी जा सकती थी। यही वजह है कि नाटक उन्हें अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान करता था। नाटकों की बात करते हुए उनके चेहरे पर एक अतिरिक्त चमक देखी जा सकती थी। उम्र के 87 वर्षों में से करीब साठ बासठ वर्ष उनके सक्रिय रंगकर्म के वर्ष कहे जा सकते हैं। वर्ष 1984 में 'शतरंज के मोहरे' की पहली प्रस्तुति से लेकर 2006 में प्रस्तुत नाटक 'राजरक्त' को मिलाकर पचास पचपन नाटकों की लंबी फेहरिस्त है। इन नाटकों के उन्होंने देश विदेश में कई बार प्रदर्शन किए। अपने देश के गाँव कस्बों से लेकर प्रतिष्ठित मंचों और उत्सवों में उनके नाटक खेले गए तो विदेशी जमीन पर हुए उनके नाटकों के माध्यम से वहाँ के लोगों ने हबीब तनवीर के रंगमंच के नजदीक से जाना। पाँच दशक से अधिक समय की हबीब की नाटक सक्रियता के रंग अनेक हैं। उनकी प्रस्तुतियों को देखें तो इसमें कहानियों के नाट्य रूपांतर हैं। उनके अपने लिखे नाटक हैं। जर्मन, रुसी, स्पेनिश, अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत नाटकों

के भारतीय नाट्य रुपांतरण हैं। लोक कहानियाँ हैं तो गाथाएँ भी हैं। रंगमंच से जुड़े उनके समुचे रचनाकर्म को देखें तो हमें उनके भीतर एक ऐसा रंगकर्मी नजर आता है जो शास्त्र और लोक का अद्‌भुत और नैसर्गिक समन्वय करना जानता हो। यह रंगकर्मी अपनी एक अलग रंग शैली और रंग भाषा गढ़ता है। अलग अलग रंग, मूड और तेवर वाली नाट्यकृतियों को मंच पर रूपायित करते हुए भी हबीब तनवीर ने उसमें रंग हबीब की महक बरकरार रखी है। शायद इसलिए जब हम 'मृच्छकटिक', 'वेणी संहार' या 'मुद्राराक्षस' जैसा क्लासिक नाटक देखते हैं या फिर यथार्थवादी शैली के 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जन्मयाई नई' या 'द इम्पार्टेंस ऑफ बीइंग अर्नेस्ट' जैसे नाटक देखते हैं तो उसमें हबीब के मौलिक रंग साफ-साफ नजर आते हैं। यही महक हमें 'हिरमा की अमर कहानी', 'आगरा बाजार', 'मिट्टी की गाड़ी' और 'बहादुर कलारिन' जैसे नाटकों में भी उड़ती-घुमड़ती है। यह खुशबू 'चरणदास चोर' में भी शिद्दत से मौजूद है।

दुनिया के रंगमंच से हबीब तनवीर ने एक्टिज ले ली है, लेकिन बीते बाँच दशकों में अपने नाटकों के माध्यम से उन्होंने रंगमंच को जो एक अलग तरह की खुशबू से भिगोया, उसकी महक बहुत दूर और बहुत देर तक बनी रहेगी।

याद रह गई मुलाकातें

(**राजेश जोशी** से **वसंत सकरगाए** की बातचीत पर आधारित)

मरणोपरांत किसी नाट्य निर्देशक के नाटकों का बार-बार पुनर्मंचन उसे याद भर करना है। इसके जरिए वो जीवित रह पाएगा, यह एक झूठी दिलासा से ज्यादा कुछ नहीं। कई उदाहरण हैं जहाँ निर्देशक की गैर मौजूदगी में उसकी नाट्य विरासत का कद दिन-ब-दिन घटता गया और सहेजने की तमाम कोशिशें बेमानी साबित हुईं। इस बारे में कवि-कथाकार राजेश जोशी ब.वा. कारंत के 'घासीराम कोतवाल' सहित कुछ और मिसालें भी पेश करते हैं। वे चाहते हैं- हबीब जी विषय की वस्तु बनें। सरकार वाकई नाट्य स्कूल को साकार करने जा रही है तो उसमें हबीबजी की दखल अनिवार्य संकाय की तर्ज पर होनी चाहिए। उनकी परम्परा पर निरंतर व्याख्यान के जरिए, नाटक के जो नए लोग तैयार होंगे वे लोक और आधुनिक नाटक में मजबूत रिश्ता कायम करने में सक्षम दिखाई देंगे। इसके अलावा फिल्म और नाट्य आलेख के उनके दस्तावेजों पर भी काम करना बहुत जरूरी है। शोध और विचार की परत-दर-परत खुलती रहेंगी और इन परतों में हबीबजी स्पंदित होते रहेंगे। राजेश यह गरज भी रखते हैं कि हबीबजी पर केंद्रित एक म्युजिएम की स्थापना हो ताकि शोधकर्ताओं की जरुरतें आसान हो सकें।

हबीबजी से पहले पहल कब मिला? ठीक-ठाक कह पाना कठिन है। तब मैं ठीक तरह लेखक नहीं बना था। सत्तर के आसपास की बात होगी। तब सूबे की कला संस्कृति में अशोक वाजपेयी का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। शरद जोशी के बुलावे पर हबीब जी 'आगरा बाजार' लेकर भोपाल में नमूदार हुए थे। यह पहला मौका था जब मैंने उनका थिएटर देखा। लम्बे अंतराल के बीच कहीं-कहीं हुईं मुलाकातें सार्थकता से भरी नहीं थीं।

उनके सृजनात्मक संघर्ष और नाटक को लेकर उनकी प्रतिबद्धता को महसूसने का मौका 'अभिव्यक्ति' में पदस्थ होने पर मिला। बाल शिक्षा पर सघन उपक्रम करने वाली इस संस्था में हबीबजी बतौर अध्यक्ष थे और मैं सहायक के रूप में काम करता था। शिक्षा के प्रसार में नाटक की भूमिका को लेकरक, नए नाट्य आलेखों की तलाश करते हबीब जी की जिज्ञासु प्रवृत्तियाँ उनकी निष्ठा को उजागर करती थीं। फिर नाट्य लेखन पर केंद्रित कला परिषद् की कार्यशाला के प्रमुख हबीबजी थे और मैं उनका सहायक। लगभग बीस दिवसीय इस कार्यशाला में हबीबजी का नाटककार मेरे लिए कहीं ज्यादा मुखर हुआ। एक ऐसा मौका, जहाँ मैंने उन्हें शिद्दत से समझा-बूझा।

सत्तर से लेकर बीसवीं सदी के अंत तक भारतीय नाटक की अवधारणा को ढूंढने की दिशा में जो कोशिशें हुईं, निश्चित ही वहाँ हबीबजी का सृजन सबसे अहम व मुस्तैद नज़र

आता है। लोक और आधुनिक नाटक को जोड़कर उन्होंने लोकप्रियता का नया मुहावरा गढ़ा। लोक नाट्य लोक भाषा और लोक कलाकारों के मिश्रण से संभव हुए उनके इस प्रयास ने दरअसल लोक को आधुनिक नाटक के बेहद करीब लाकर खड़ा किया। इस अद्वितीय प्रयोग से नाटक की अंतर्वस्तु महत्वपूर्ण बनी। साथ ही हिन्दी के साथ ज्यादा सम्प्रेषणीय और व्यापक बन पाया। कहना गलत होगा, देशज थिएटर क्या हो सकता है, सच्चे अर्थों में इसे सिर्फ हबीबजी ने संभव किया है। दीगर कोशिशें उतनी कारगर नज़र नहीं आईं।

नाटक 'आगरा बाज़ार' का आलेख किसी भी लेखक के लिए ईर्ष्या और सबक की चीज़ है। ये दोनों बातें मेरे सामने अब भी कायम हैं। अजीब विचित्रता है, एक अनुपस्थित पात्र पूरे नाटक में उपस्थित रहता है। उसके बगैर कोई भी हालात सधता नहीं। नजीर की अनुपस्थिति उसे उपस्थित से ज्यादा उपस्थित करती है। चमत्कृत करने वाला हबीबजी का यह लेखकीय अंदाज़ सचमुच उन्हें एक बड़ी उपलब्धि प्रदान करता है। भीष्म साहनी और मणि मधुकर जैसे कमलकारों ने कबीर को कागज पर उतारा और जब कबीर मंच पर आए तो बेहद बौने लगे। कोई चरित्र जब पात्र के रूप में सक्षम होता है तो बहुत छोटा नज़र आता है। इसके उलट 'आगरा बाज़ार' नज़ीर के कद को अप्रतिम ऊँचाइयाँ देता है। तुलसी दास या कबीर पर लिखने का अवसर मिला तो इन्हें 'आगरा बाज़ार' के नजीर की तरह ऊँचाइयाँ देना मेरा मुख्य लक्ष्य रहेगा।

लोक की दृष्टि से 'चरणदास चोर' के अलावा हबीबजी द्वारा रुपांतरित विदेशी नाटक 'देख रहे हैं नैन' अच्छे प्रयोग बन पड़े। जबकि भंजदेव राजा पर आधारित नाटक 'हिरमा की अमर कहानी' अपेक्षाकृत सफल नहीं रहा।

हबीब जितने बड़े नाटककार थे उतने ही उम्दा शायर भी। वे अक्सर कहा करते थे- 'नाटक ने मेरे शायर को मार दिया'। अब उनकी शायरी पर बात करना उनके शायर को जिंदा करने की तरह लाजिमी है। उनकी शायरी के तमाम हावभाव रंगमंच पर हरकत करें और गहन चर्चाओं का भरापूरा दौर भी चले।

हबीब तनवीर की विजय यात्रा

उर्फ यूरोप में 'चरणदास चोर'

ब्रिटेन में समकालीन रंगकर्म के इतिहास में एक अनूठी घटना दर्ज हो गयी थी। वे रंग समीक्षक जो रंगमंच प्रदर्शन की कटु समीक्षाएँ लिखने के लिए ख्यात रहे हैं, जो रचनात्मकता के क्षेत्र में किसी भी प्रकार की मुरव्वत नहीं करते और सिर्फ कला के श्रेष्ठ मानदंडों को ही विचार में रखते, उन्होंने भारत के ही एक पिछड़े इलाके छत्तीसगढ़ के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत चरणदास चोर की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इतना ही नहीं बल्कि 'स्काट्समेन' समाचार-पत्र ने अति महत्वपूर्ण फ्रिंज फर्स्ट प्राइज को मध्य सप्ताह में इस नाटक को दिया, जो इस पुरस्कार के इतिहास में अभूतपूर्व घटना है। वास्तव में नया थियेटर के कलाकारों ने अपनी सृजनशीलता से दर्शकों को इतना विभोर कर दिया था कि यह पुरस्कार पूर्व परम्पराओं को तोड़ कर पहली-पहली बार मध्य सप्ताह में देने के लिए पुरस्कार घोषित करने वाले विवश हो गये थे।

प्रख्यात रंगकर्मी हबीब तनवीर के निर्देशन में भारतीय लोक नाट्य दल पहली बार ही भारत के बाहर प्रदर्शन देने गया था और यह पहली कला-यात्रा ही पश्चिम की कला-विजय यात्रा सिद्ध हुई। लंदन के गार्जियन अखबार के नाट्य-समीक्षक ने अपनी बात का समापन करते हुए लिखा कि हबीब तनवीर पूर्व और पश्चिम के बीच की खाई को पाटने के लिए आदर्श व्यक्ति हैं।

श्री तनवीर के 'नया थियेटर' और 'चरणदास चोर' से भारत के दर्शक अच्छी तरह परिचित रहे हैं। श्री तनवीर इसे ब्रिटेन में चल रहे फेस्टिवल ऑव इण्डिया में प्रदर्शित करने के लिए ले गये थे। उन्होंने इसे एडिनबारा फेस्टिवल, जिसे स्थानीय लोग फ्रिंज फेस्टिवल कहते हैं, में भी प्रदर्शित किया। और उसके बाद इंग्लैंड, पश्चिम जर्मनी, एमस्टरडम और पेरिस के विविध स्थानों में प्रदर्शित किया।

जैसे ही नया थियेटर इंग्लैंड में पहुँचा, वहाँ के अखबारों और कला समीक्षकों ने इसके संबंध में टिप्पणियाँ लिखना शुरू कर दिया था। ऐसी ही एक टिप्पणी में स्काट्समेन ने लिखा- ''अगले सप्ताह सोमवार को जब एडिनबरा के असेम्बली कक्ष में चरणदास चोर का

प्रदर्शन होगा तो यह नया थियेटर के 30 आदिवासी लोक अभिनेताओं की भारत के बाहर पहली प्रस्तुति होगी। यद्यपि वे न पढ़ सकते हैं, न लिख सकते हैं। उनका यह ऊपरी तौर से दिखने वाला पिछड़ापन ही उनकी सबसे बड़ी खूबी है। एक बार जब वे मंच पर आते हैं तो वे ऐसा ओज और उन्मुक्त आनंद बिखेर देते हैं, जिसके जमाव में भारत के शहराती और देहाती दोनों ही दर्शक आ चुके हैं, और अब वे यही काम यहाँ भी कर सकते हैं।'' .....यह नाटक आधुनिक भारतीय नाटक की संभावित शक्ति को भी प्रकट करता है। नया थियेटर पूर्व और पश्चिम का विवेकपूर्ण समन्वय कर ऐसी रचना का विकास कर रहा है जो विश्व रंगमंच की प्रथम पंक्ति में स्थान पाने के योग्य है। एडिनबरा में हबीब तनवीर और उनके आदिवासी अभिनेताओं को अंतर्राष्ट्रीय अभिस्वीकृति प्राप्त हो सकती है।

एक टिप्पणी में यूरोप के प्रमुख दैनिक स्काट्समेन ने लिखा- ''अगले सप्ताह सोमवार को जब एडिनबरा के असेम्बली कक्ष में चरणदास चोर का प्रदर्शन होगा तो यह नया थियेटर के 30 आदिवासी लोक अभिनेताओं की भारत के बाहर पहली प्रस्तुति होगी। यद्यपि वे न पढ़ सकते हैं, न लिख सकते हैं। उनका यह ऊपरी तौर से दिखने वाला पिछड़ापन ही उनकी सबसे बड़ी खूबी है। एक बार जब वे मंच पर आते हैं तो वे ऐसा ओज और उन्मुक्त आनंद बिखेर देते हैं, जिसके जमाव में भारत के शहराती और देहाती दोनों ही दर्शक आ चुके हैं, और अब वे यही काम यहाँ भी कर सकते हैं।''

स्काट्समेन के नाट्य समीक्षक फ्रेड ब्रिजलैंड ने लिखा कि- ''भारतीय ग्राम्य जीवन के सभी पारंपरिक चरित्र-जमींदार, पुलिसमेन, नशेलची साधु-अच्छी तरह चित्रित किये गये। यद्यपि नाटक हिन्दी-छत्तीसगढ़ी में था, फिर भी कथा को समझने में बहुत कम कठिनाई हुई, क्योंकि ये भारतीय अपने पूरे शरीर से- खासकर अपने हाथों और चेहरों से-बोलते थे। इस नाटक को देखना नहीं भूलना चाहिये। शासकीय उत्सव के लिए आमंत्रित किये जाने के लिये यह पर्याप्त योग्य है।''

स्काट्समेन ने बाक्स आयटम में इस नाटक को फ्रिंज फर्स्ट पुरस्कार की घोषणा इस प्रकार की- 'फ्रिंज फर्स्ट में सबसे पहला।'

इसी पुरस्कार के संबंध में प्रख्यात् समीक्षक नेड चैलेट ने भारतीय ओजस्विता के लिए फ्रिंज विजय शीर्षक से एक लंबी टिप्पणी में लिखा कि- ''फ्रिंज के इतिहास में स्काट्समेन अखबार ने अत्यधिक स्पृहणीय फ्रिंज फर्स्ट पुरस्कार प्रथम सप्ताह के मध्य में कभी नहीं दिया, परन्तु भारत की नया थियेटर कंपनी ने इस परम्परा को तोड़ दिया। इस कंपनी ने गर्व के साथ ओजस्वी प्रस्तुति 'चरणदास चोर' के लिए यह पुरस्कार प्राप्त किया। यह प्रदर्शन इतना जीवंत और रोचक था कि अधिकारिक उत्सव ने कंपनी को सम्मानित करने की अपनी इच्छा व्यक्त कर दी। यह ऐसा रंगमंच है जो एक साथ ही पवित्र और अपवित्र है। यह एक भव्य नजारे के रूप में सामने आता है और राजनीतिक तथा निजी अर्थों के साथ प्रतिध्वनित होता है।'' नेड ने फ्रिंज फेस्टिवल के साथ आयोजित होने वाली संगोष्ठी की सराहना की और लिखा कि

''नया थियेटर के अगुआ हबीब तनवीर द्वारा की गयी बातचीत उनके कार्य को स्पष्ट रूप से उजागर करने वाली भूमिका के रूप में थी।''

एडिनबरा में प्रदर्शन के बाद चरणदास चोर रिव्हर साइड में खेला गया। इस प्रस्तुति की समीक्षा करते हुए ख्यात समीक्षक इनविंग वार्डल ने 25 अगस्त के द टाइम्स में लिखा कि- ''एडिनबरा से जय-जयकार की लहर पर आरूढ़ होकर आने वाला नया थियेटर अपनी प्रशंसा के अनुरूप सिद्ध हुआ। इस दल के एक संस्कारित निर्देशक (हबीब तनवीर) के साथ कार्यरत ओजस्वी रूप से प्रतिभा सम्पन्न भारतीय लोक कलाकारों, और एक सच्ची कथा कहने के अपने सामूहिक आनंद के जरिये स्थानीय को विश्वजनीन में रूपांतरित करने के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा हुई थी।'' समीक्षक ने लिखा कि ''नया थियेटर की अभिनय-शैली में पहेली बुझौवल खेल की साधारण सांकेतिक अंग-भंगिमाओं और अत्यन्त नियमनिष्ठ समूह कार्य का समन्वय किया गया है। यह बाजार और देवालय दोनों ही जगहों का है। और जब तनवीर खुद एक छोटी भूमिका में मंच पर आते हैं तो आप अत्यधिक संतोष पाते हैं। तनवीर विशिष्ट मुख-सौन्दर्य वाले व्यक्ति हैं जो कि क्षणिक विचारों को अपने सिर को हल्का सा झटका देकर या अपने गले में लटकते हार के एकाध मोती को अंगुलियों से छूकर व्यक्त करने में सक्षम हैं।'' इरविंग का कहना था कि ''तनवीर किसानों के बीच में एक अभिजात वर्गीय लगते हैं। पर इससे आस-पास की मंडली का हास्योत्पादकता का प्रभाव अधिक गहरा होता है, खासकर चैतराम के खुशामदी भंगी, रविलाल के भगदड़ करते बेंत लिए पुलिस मेन की भूमिका में, जहाँ कि वे लोग सुपरिचित माडल को ध्यान में रखकर भूमिका करते रहते हैं।'' इरविंग ने इस प्रदर्शन को ''जीवन की पुष्टि करने वाली घटना'' निरूपित किया।

रिव्हर साइड में हुए प्रदर्शन के संबंध में माइकेल बिलिंगटन ने गार्जियन में 25 अगस्त को लिखा कि ''एक सामान्य कामेडी के रूप में शुरू होकर यह नाटक चोर की नैतिक श्रेष्ठता की प्रशंसा में समाप्त होता है और कथा में भोलापन और संस्कारिता का जो सम्मिश्रण है, उसे हबीब तनवीर के प्रदर्शन में पूरी तरह से प्रकट किया गया है। चरन बार-बार जोशीले और बेतकल्लुफ पुलिसमेन को चतुराई से पराजित करता है। इसमें शांत कामेडी आकर्षक है। ...इस कथा में तबला, क्लैरनेट, हारमोनियम और ढोल के साथ समूह गान गुँथे हैं। नाटक के उत्तरार्द्ध में हतप्रभ कर देने वाला कर्मकांडी नृत्य है जिसमें ढोल बजाने वाला दरवेश के समान चक्कर खाता है और जिसमें गायक ढोल बजाने वाले के दंडवत धड़ पर खड़ा रहता है। दर्शक के समक्ष जो दृश्य आता है वह एक वृत्तात्मक रंगमंच और लोक कौशल का आश्चर्यकारी समन्वय है। और यह हबीब तनवीर की सफलता का मानदंड है कि दर्शक गोविंदराम के नायक को सिर्फ एक देहाती लफँगे समझना शुरू करते हैं और अंत में उसे एक प्रत्यक्ष नैतिक शक्ति के रूप में मानने लगते हैं।'' इसी प्रदर्शन के संबंध में द स्टैंडर्ड में क्रिस्टोफर हडसन ने 25 अगस्त को लिखा कि ''नाटक के सभी अभिनेताओं ताजगी भरा सहज स्पर्श और इतनी विभोर कर देने वाली सांगीतिक लय के साथ अभिनय किया कि हम यह भूलने को मजबूर हो गये कि हम हिंदू प्रस्तुति सुन रहे हैं। ...यह ध्यान में रखते हुए कि सारे के सारे अभिनेता भारत के मध्य हिस्से के प्रांत मध्यप्रदेश के ग्रामवासी हैं, ओजस्वी पंथी नर्तक भिलाई इस्पात कारखाने के सौजन्य से सामने आ रहे हैं- यह परिहासमय और भड़कीली, और संशयरहित विश्वास के साथ प्रदर्शित एक उल्लेखनीय प्रस्तुति है। चरणदास के रूप में गोविंदराम और रानी की भूमिका में फिदाबाई विशिष्ट गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।

'गार्जियन' ने 27 अगस्त को टिप्पणी की कि हबीब तनवीर द्वारा निर्देशित ग्रामीण कलाकारों का यह समूह अपनी उत्कृष्ट हास्य-शैली और प्रभावपूर्ण समूहों द्वारा हमारी प्रमुख नाट्य कंपनियों को महत्वपूर्ण बातें सिखा सकता है।

लंदन में इस प्रदर्शन के संबंध में विक्टोरिया राडिन ने आब्जर्वर में अभिमत दिया कि ''इस प्रदर्शन के साक्ष्य से (यह

निश्चित है कि) इसका अनुप्रयोग विश्वजनीन है। कुछ मास पहले पीटर ब्रुक ने 'द टाइम्स' में अपने साक्षात्कार के अधिकांश हिस्से में विनम्रता के साथ (नया थियेटर) कंपनी के काम की पास रूट पॉप आर्ट के रूप में प्रशंसा की।'' विक्टोरिया ने लिखा कि ''इस कंपनी की स्थापना के पीछे हबीब तनवीर का उद्देश्य एक ऐसे आधुनिक भारतीय रंगमंच की रचना करने का रहा है जो पश्चिमीकृत शहरवासियों और समय की धारा से कटे हुए देहातों में रहने वाले लोग के बीच की दूरी लोक नाट्य के शुद्धीकृत और संस्कारित रूप द्वारा पाट सके।''

अंत में 'द टाइम्स' की एक बाक्स आयटम खबर। द टाइम्स ने यह खबर छापी कि ''आर्थिक रूप से परेशान रिव्हर साइड स्टूडियोज को नारियल का प्रसाद मिला है। भारत से आया नया थियेटर ट्रुप अपने बेहद लोकप्रिय प्रदर्शन चरणदास चोर को शुरू करने के पहले एक नारियल फोड़ता है और अपने ग्राम देवता से उस मंच को आशीर्वाद देने की प्रार्थना करता है जिस पर वह ट्रुप प्रदर्शन करता है। इसमें अवश्य कुछ (शक्ति) है, क्योंकि रिव्हर साइड में रविवार को तीन प्रदर्शन हुए जिनके सारे के सारे टिकट बिक गये थे और एडिनबरा फेस्टिवल में अपील फंड की सहायता के लिए किया गया हितकारी प्रदर्शन भी बहुत सफल रहा।''

-सुशील त्रिवेदी (कलावार्ता' से साभार)

सच्ची हमकदम थीं मोनिका

हबीब तनवीर और उनकी जीवन संगिनी मोनिका मिश्र 'दो-जिस्म एक जान' थे। करीब पचास साल के संग-साथ में मुश्किलों के जाने कितने दौर आए-गए लेकिन रंगमंच की पथरीली राहों पर वे एक-दूसरे के हमकदम बने रहे। मोनिकाजी सच्चे अर्थों में हबीबजी की पाथेय थीं। उनके रंगमंच के नेपथ्य की वफादार नायिका, जिसके बगैर शायद हबीबजी के नाटक अधूरे ही रहते।

हबीबजी से पहली भेंट मोनिकाजी की १९५४ में हुई थी जब अमेरिका के डेनवर विश्वविद्यालय में थियेटर के जाने-माने विशेषज्ञ डॉ. केम्पटन बेल के मार्गदर्शन में अपनी पढ़ाई पूरी कर वे भारत लौटी थीं। वहाँ उन्होंने वाल्मिकी रामायण पर कला में स्नातकोत्तर उपाधि का शोध पूरा किया था। दिल्ली में थियेटर करने की गरज से बेगम जैदी के समूह में हिन्दुस्तानी थियेटर में शामिल हुई तो वहाँ अचानक नेतृत्व करने आए युवा रंगकर्मी हबीब तनवीर से उनकी मुलाकात हुई। यह एक गुस्से भरी भेंट थी क्योंकि मोनिकाजी को थियेटर से निकालकर हबीब की नियुक्ति की गई थी। लेकिन दिल्ली के जनपद इलाके के एक आल्प्स रेस्टोरेंट में जब विस्तार से विचारों का आदान-प्रदान हुआ तो यह मनोमालिन्य आत्मीयता में बदल गया। कुछ दिन बाद दोनों दिल्ली के ही एक गेरेज में साथ रहने लगे और 'नया थियेटर' की स्थापना की। नाटक को रोजी बनाकर जीवन चलाने का यह ख्वाब बहुत कठिन था। माली हालत खस्ता थी लेकिन जुनून-ए-थियेटर के चलते फाँकों में भी जलसे का अहसास होता रहा। पहला नाटक वाई.डब्ल्यू.सी.ए. कान्सटेन्सिया हॉल में किया। तब सात सौ रुपए का मेहनताना मिला। लेकिन यह पारिश्रमिक कश्मीर रिलीफ फंड में दान कर दिया। नाटक का नाम था- 'सात पैसे'। दो चरित्रों के इस नाटक का निर्देशन मोनिकाजी ने किया था। सेट पर खर्च आया था तेरह रुपए। उस दिन ही दोनों ने तय किया कि कभी भी नाटक के सेट, परिधान और मेकअप पर ज्यादा खर्च नहीं करेंगे और यह सादगी हबीबजी के नाटकों में बनी रही।

हबीबजी के संघर्ष में मोनिकाजी हमेशा संबल के रूप में शामिल रहीं। नाटक के चयन, उसके आलेख, पात्रों का चयन, निर्देशन, नेपथ्य के तमाम सूत्र जो मंच की रंगत का अहम हिस्सा होते हैं, मोनिकाजी पूरी जिम्मेदारी से सम्हालती रहीं। 'नया थियेटर' के छत्तीसगढ़ी ग्रामीण कलाकारों के साथ उनका व्यवहार परिवार के सदस्यों की तरह स्नेह से छलछलाता था। 'नया थियेटर' के अनुशासन और आत्मीयता के बीच संतुलन बनाने में मोनिकाजी की महत्वपूर्ण भागीदारी थी। हबीबजी से उनका विवाह १९६१ में हुआ। संयोग से शादी के दूसरे ही दिन नाटक 'रूस्तम और सोहराब' का मंचन था। मोनिकाजी ने सदा हबीबजी की प्रतिभा और पुरुषार्थ का सम्मान किया। वे हबीबजी की शायरी और नाटक दोनों की कद्रदान थीं। वे अपने पति को शांत और दृढ़ निश्चयी मानती थीं। नाटकों को लेकर असहमतियों के बावजूद तार्किक ढंग से उनका हल खोज लेती थी। १९६४ में उन्होंने बेटी (नगीन तनवीर) को जन्म दिया, जो खुद 'नया थियेटर' के संचालन में आज अहम भूमिका निभा रही है। बीमारी की हालत में भी वे जीवन के अंतिम समय तक थियेटर के बारे में सोचती रहीं। पकी उम्र और थकी देह के बावजूद मोनिकाजी का मनोबल सदा थियेटर के प्रति बना रहा। वे उस वक्त दुनिया को रुखसत कर गईं जब हबीबजी खुद पिच्यासी के आसपास थे। जैसे किसी बूढ़े दरख्त की शाख से अचानक वक्त की आँधी पत्ते ले उड़ी हो...।

जिंदगी के गुज़िश्ता लम्हों को याद करते हुए हबीबजी भावुक हो उठते- ''मेरी मौज, मुश्किलों और कामयाबियों में बराबर की हिस्सेदार थी मोनिका। मेरी तमाम खूबियों और खामियों के साथ उसने मुझे कुबूल किया। उसकी अनुपस्थिति मेरे वजूद को आधा कर गई है।''

सादगी ने ही 'बाबा' को महान बनाया

नगीन तनवीर (हबीब तनवीर की रंगकर्मी बेटी)

मैं किस्मत वाली हूँ कि मुझे जन्म लेते ही घर में कला का वातावरण हासिल हुआ। मेरी परवरिश गांव के भोले-भाले कलाकारों के बीच हुई और मुझे उनसे अंतरंग होने का मौका मिला। यह सब बाबा-अम्मा की वजह से हुआ जिन्होंने थियेटर को अपनी समूची जिंदगी दे दी। हबीब तनवीर जैसे समर्पित, बहुआयामी और कामयाब कलाकार पिता के बारे में कुछ भी बयान करते हुए मुझे झिझक होती है। जब आप किसी के बहुत निकट रहें तो फिर उसे अब्जेक्टिविटी से देखना बहुत मुश्किल होता है। बाबा से मेरे संबंध हमेशा सहज रहे। एक प्रसिद्ध रंगकर्मी के रूप में बाहर उनकी जो पहचान रही उसके अनुरूप घर में उनका रहन-सहन बेहद सहज, सादा और सदैव सृजनशील रहा।

मुझे यह लगता है कि कोई भी अच्छा कलाकार हो, सिरियसली काम करे, अपना प्रोजेक्शन नहीं करे तो उसमें विनम्रता होती है। वह मेरे पिताजी में थी। वे थोड़े शर्मीले स्वभाव के भी रहे लेकिन मोहब्बत वाले इंसान। हमेशा चौकन्ने रहते कि आगे-पीछे क्या हो रहा है। बहुत ऊंचे लेबल का इंटेलीजेंस भी था। मतलब जो कल्पनाशक्ति है उसको अनुभवों से उन्होंने जोड़ा। जीवन में जो अनुभव आये पर्सनल लाइफ में उन्हें कैरियर के जीवन में जोड़ा ड्रामों में। इसलिए उनके ड्रामों में वह सच्चाई महसूस होती दर्शक को कि अरे, यह तो जीवन की बात है। यह तो हमारे जीवन में भी घटती है। उनके नाटकों का प्रोसेस बहुत आहिस्ता चलता। पहले जैसे एक नया ड्रामा लिया हाथ में तो पहले उसकी पूरी स्टडी वे करते, रिसर्च उसमें होता कि कथानक में क्या कहा जा रहा है? कहानी क्या है? फिर उनके जो गुरू थे लन्दन में, जहाँ से उन्होंने तालीम पायी उन्होंने एक गूढ़ बात कही थी कि नाटक की सफलता है कहानी का कहा जाना। मंच पर कहानी समझ में आनी चाहिए आसानी से आडियंस के। इसी तथ्य को हमेशा उन्होंने ध्यान रखा है। पहले वे खुद कहानी को कई दफा पढ़ते और उसमें अगर कुछ एडिटिंग की जरूरत है या कुछ जोड़ने की जरूरत है तो वो करते। फिर रीडिंग करवाते सबसे। हरेक पार्ट में से सबको गुजार देते। फिर एकदम आखीर में जाकर कास्ट्यूम का। बीच में गाने सोचते रहते। गाने, धुनें, कहीं से इन्सपीरेशन, कहीं कोई अचानक अच्छी धुन सुनायी दी तो उसको देखते हैं कि उस इंटर में बैठती है कि नहीं। चौबीसों घण्टे दिमाग में चलती रहती कल्पनाएं। अम्मा की भी हर पक्ष में सहभागिता रहती। मतलब डायरेक्शन में भी वह साथ देती। पिताजी के और जहाँ तक नाटक के अध्ययन का सवाल है, उसमें भी वे मदद करती काफी डिस्कशन और आदान-प्रदान विचारों का होता। कास्ट्यूम में तो उनका अहम सहयोग होता ही। मेरा तो क्षेत्र संगीत का ही है। मैं थिऐटर को अपना क्षेत्र नहीं बनाना चाहती। मैं बैकग्राउण्ड ही में रहना चाहती थी। संगीत में जैसे धुनों की बात है तो उसमें मैं मदद करती रही।

भोपाल स्थित घर में पिता हबीब तनवीर के साथ बेटी नगीन

मेरे मन में बाबा का बहुत रंगीन चित्र बनता है। इसलिए कि उनके चरित्र के बहुत सारे पक्ष हैं। अलग-अलग स्लॉट होते हैं ब्रेन में। वे एक बहुत राउण्डेड पर्सनॉलिटी जान पड़ते हैं। इसलिए कि बहुत बैलेंस्ड माइंड थे, स्थिर दिमाग था, और सोचने का थोड़ा फिलासॉफिकल आस्पेक्ट भी बहुत गहराई से सोचना और सब

एंगल्स को नजर में रखते हुए सिचुएशन को देखना। यह बहुत कम लोगों में पाया जाता है। मन उनका बहुत कोमल थी। बहुत ही दयालु थे वे। रौब भी उनकी पर्सनालिटी से टपकता था। इन सबको मिलाकर तो बहुत दिलचस्प चित्र बनता है उनका। 'नया थियेटर' को लेकर लगता है कि बाबा के बाद कोई दूसरा डायरेक्टर उसे सम्हाल पायेगा मुझे इसमें बहुत सन्देह है। गाँव वालों को समझना इतना आसान नहीं है। गाँव वाला चुप रहता है। वह अपनी राय नहीं देता। आप उससे पूछिये कि फलां क्या है, किस तारीख को आओगे, छुट्टियों के बाद कब जाना? सब चुप। कोई निर्णय ही नहीं। तो फिर बाबा निर्णय लेते कि फलां तारीख। बाबा ने इनको साइकोलॉजिकली टेकल किया। इमोशनल लेबल पर भी साइकोलॉजिकल लेबल पर भी। वह बहुत जरूरी होता है।

सबसे ज्यादा खुशी का क्षण तब आया जब हमको, बाबा के थियेटर को स्वीकारा गया विदेश में। सन् 1982 में जब ''चरणदास चोर'' लेकर गये थे और 52 देशों में अब्बल नम्बर आया। छत्तीसगढ़ी, गाँव के कलाकार थे। तब बाबा को लगा कि मेरा थियेटर सफल हुआ है। इसलिए कि पहले तीन-चार साल काफी संघर्ष के थे और फेलियर भी। दिल्ली में लोग पूछते थे कि आप गाँव वालों को क्यों लाये? छत्तीसगढ़ी में क्यों नाटक कर रहे हैं? तो इस सवाल का जवाब तब देना मुश्किल होता था। अब समझ पा रहे हैं लोग कि गाँव वालों के साथ क्यों काम किया? बाबा ने कभी हिम्मत नहीं हारी। जरूरी होता है किसी भी क्रिएटिव काम में बस लगे रहना। 1989 में फिदाबाई एक एक्सीडेण्ट में जल गयीं। बहुत बड़ा उस घटना से धक्का लगा। इसलिए कि अब लीडिंग एक्ट्रेस नहीं रहीं। वे नाच भी अच्छा लेती थीं और गा भी लेती थीं। रेंज भी काफी थी। ऐक्टिंग भी अच्छा कर लेती थीं। काफी रोल उन्होंने कामयाबी से निभाये। किसी के जाने से काम नहीं रुका 'नया थियेटर' का लेकिन इसका दुख अब तक है। नया थियेटर की कुछ चीजों के दस्तावेजीकरण को लेकर मैं अब सक्रिय हो गयी हूँ। उसके नाटकों का जो सांगीतिक पक्ष है उसको लेकर मैं डाक्यूमेंटेशन कर रही हूँ। यह सलाह मेरी गुरू सुलोचना जी ने दी, कहा- यही तो तुम्हारी पूँजी है और कर्तव्य भी।

शुरू हुए थे शायर के तौर पर मेरे पिता। उनकी कविताओं को, उनकी शायरी को एकत्र करके छपाने का काम भी हो सकता है मतलब जो संगीत है और साहित्य का पक्ष है वह तो जीवित रह सकता है। फिर नाटक उन्होंने खुद लिखे भी वे भी छप सकते हैं। और जो नाटक हैं वे वीडियो हो सकते हैं। इस तरह से एक तरह का प्रिजर्वेशन हो सकता है। और जहाँ तक कि लाइव परफार्मेंस हैं नाटकों का, तो यह तो मुझे शक है कि कोई आगे बढ़ा पायेगा। थियेटर से हटकर बाबा जिंदगी में भी खूबसूरती चाहते, मिसाल के तौर पर भोपाल में घर खरीदा अंसल अपार्टमेण्ट्स में। उनको इतना जोश आया कि उन्होंने बहुत सारी चीजें खरीद लीं घर के लिए। खुद का घर पहली बार हुआ तो कोई भी खूबसूरत चीज हो उस वस्तु के प्रति उनका दिल आकर्षित होता। खाना वे बहुत सादा ही पसन्द करते। घर में तो बिल्कुल सादा ही खाते। दाल-भात, सब्जी-रोटी लेकिन उनको अच्छे-अच्छे खाने भी पसन्द रहे। खूबसूरती किस क्रिएटिव हाथ को पसन्द नहीं होती। जब कोई फिल्म का ऑफर मिलता और उनको स्क्रिप्ट पसन्द आती और वह मजेदार लगती तो वे हाँ कह देते। उन्होंने कभी किसी ऑफर को अगर उन्हें अच्छा लगे तो इंकार नहीं किया। अभी-अभी एक-दो सीरियल में, टेलीविजन में 'प्रहार' फिल्म में काम कर चुके हैं। ज्यादातर वे थियेटर वाले इंसान थे।

मध्यप्रदेश में उन्हें सम्मान काफी मिला। लेकिन मध्यप्रदेश में दुश्मन भी काफी रहे। छत्तीसगढ़ में भी। जाहिर है कि जितने दोस्त उतने ही दुश्मन भी पैदा हो जाते हैं। यहां दर्शकों ने उन्हें हमेशा स्वीकारा है। जबलपुर में, भोपाल में भी और छत्तीसगढ़ में तो बहुत अच्छा आडियंस मिला। गाँव का आडियंस बहुत बढ़िया मिला है। इस कास्तता में भी हमारे परिवार की सामाजिकता प्रभावित नहीं हुई। दिल्ली में रिश्तेदार हैं। रायपुर में बहनें हैं दो। और कोचीन में कुछ लोग हैं। त्यौहारों में काफी धूम-धाम होती है। दिये जलाती हूँ, पूजा करती हूँ, रंगोली बनाती हूँ। कोई बाधा नहीं आती कैरियर में। सब एक भाव से चलता रहता है। बाबा चाय बना लेते हैं और मैगी भी। एक बार अकेले थे दिल्ली में और मैं और अम्मा नहीं थे, तो दोस्त ले आते थे खाना उनके लिए। फिर वे भूल जाते थे अपने काम की लौ में। वह खाना फ्रिज में पड़ा रहता था फिर कभी ख्याल आया तो निकाल के खा लिया, वरना वे मैगीनुडिल्स खाते थे और चाय बनाते थे। किताबें पढ़ने में उनकी गहरी दिलचस्पी रह। चाहे वह ड्रामे की हो या नोबेल हो या मिस्ट्री मर्डर स्टोरी हो या कविताओं की किताब हो या फिल्मों के बारे में या दूसरे थियेटर के बारे में और वेस्टर्न थियेटर देखा बहुत है। यूरोप में जब वे गये थे तो आठ महीने वे थियेटर देखते रहे। अमरीका में भी बहुत थियेटर देखा तो उससे भी बहुत अनुभव हासिल हुआ और काफी चीजें ग्रहण कीं। उनको अपने थियेटर में वे मददगार रहीं। सोशलाइजिंग में उनको बहुत मजा आता है। दोस्तों से मिलना-मिलाना उनको बहुत अच्छा लगता। क्रिकेट का उन्हें बहुत शौक था। कुछ काम न हो और टेलीविजन में मैच आ रहा हो तो वे शौक से देखते। और फुटबाल है भी। हाँ, पहले वे चौसर भी खेला करते थे। हम लोग सब खेलते थे बैठ के। ताश में कभी उन्हें दिलचस्पी नहीं रही। चौसर में और चाइनीज चक्कर ज्यादा। फिल्मों में गीताबाली नायिका के रूप में उनको बहुत अच्छी लगती। और ऐक्टरों में मोतीलाल, कुन्दनलाल सहगल।

सबसे ज्यादा खुशी का क्षण तब आया जब हमको, बाबा के थियेटर को स्वीकारा गया विदेश में। सन् 1982 में जब ''चरणदास चोर'' लेकर गये थे और 52 देशों में अब्बल नम्बर आया। छत्तीसगढ़ी, गाँव के कलाकार थे। तब बाबा को लगा कि मेरा थियेटर सफल हुआ है। इसलिए कि पहले तीन-चार साल काफी संघर्ष के थे और फेलियर भी। दिल्ली में लोग पूछते थे कि आप गाँव वालों को क्यों लाये? छत्तीसगढ़ी में क्यों नाटक कर रहे हैं? तो इस सवाल का जवाब तब देना मुश्किल होता था। अब समझ पा रहे हैं लोग कि गाँव वालों के साथ क्यों काम किया? बाबा ने कभी हिम्मत नहीं हारी।

बाबा के जन्मदिन पर नया थियेटर की मण्डली नारियल फोड़ती, तोहफा देती, पूजा करती।

...और छलक उठे निर्मलकर

एक आँख में आँसू और दूसरी में मुस्कान। मुमकिन है, किसी नाटकीय कथानक के किरदार को जीते एक अभिनेता के लिए यह संयोग चुनौती बन जाए, मगर ज़िंदगी के रंगमंच पर अपनी ही कहानी के पन्ने पलटते गोविन्दराम इस कदर भावुक हुए कि एक पल हँसते, एक पल रोते। तभी तो उनके ओठों से नगमा फूट पड़ा 'मुझे खुशी मिली इतनी कि मन में ना समाय, पलक बंद कर लूँ कहीं छलक ही न जाए'।

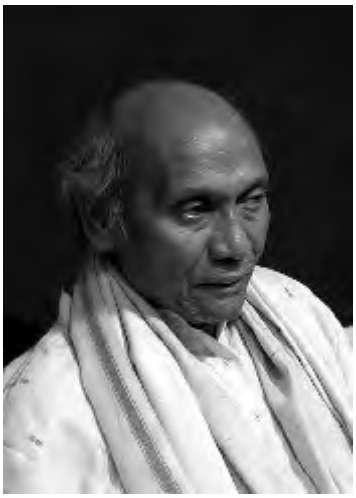

....पूरा नाम गोविन्दराम निर्मलकर। छत्तीसगढ़ के धूल फाँकते गाँव की पगडंडी पार कर नाचा का यह मनमौजी कलाकार उड़न खटौले की सैर करता सरहद पार के मुल्कों में अपनी बेधड़क दस्तकें देता रहा है। मुफलिसी और गुमनामी से बेपरवाह इस हरफनमौला फनकार के हुनर और काबिलियत का ही कमाल है कि चौहत्तर की इस बुजुर्ग शख्सियत की पहचान के साथ अब 'पद्मश्री' का तमगा भी जुड़ गया है। कभी समाज के आखिरी छोर पर गिने जाने वाले इस देहाती के दामन पर देश की प्रथम नागरिक (राष्ट्रपति) ने खुद अपने हाथों सम्मान का मैडिल लगाया। 'प्रतिभा' ने प्रतिभा को नवाजा। इसे क्या कहेंगे आप? तकदीर! निर्मलकर को नज़दीक से जानने वालों की सुनें- 'संघर्ष की ज़मीन पर कर्म की स्याही से सफलता की उजली इबारत लिखी है गाँव के एक 'गोविन्द' ने'।

नाटक की दुनिया से बावस्ता लोगों से गोविन्दराम निर्मलकर का नाम और काम अछूता नहीं है। मशहूर रंगकर्मी हबीब तनवीर के 'नया थिएटर' की दर्जनों नाट्य प्रस्तुतियों में अहम चरित्रों की हू-ब-हू तस्वीरें गढ़ने में माहिर। मंच गाँव, शहर, राजधानी या फिर पराए वतन के हों, हिस्से में आए किरदार चाहे जो हों, नाटक कालिदास का हो या शेक्सपीअर का, संवाद छत्तीसगढ़ी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू या फिर अंग्रेजी में हों, निर्मलकर की प्रतिभा निर्भीक होकर मजे-मजे में सारी कसौटियाँ पार करती रही। कौन-सी ताकत थी जो हर कल्पना पर खरी उतरती रही? बकौल गोविन्दराम- ''अपनी परंपरा की शक्ति, जिसमें मिट्टी के संस्कार मिले हैं। इन्हीं में रमकर इन्हें माथे पर लगाकर हम दुनिया भर में घूम आए''। पढ़ाई के नाम पर किसी स्कूल की चौखट पर पाँव नहीं रखा। कलम और कागज से भी दूर का ही नाता रहा। लेकिन हबीब तनवीर के सपने और शोहरत शायद बीच राह में दम तोड़ देते अगर लोक की ज़मीनी खुशबुओं को अपने मन-प्राण में बसाने वाले निराले निर्मलकर उनके हम सफर न होते।

संयोग की यह कहानी भी बड़ी दिलचस्प है। उमर तेरह साल की थी। छत्तीसगढ़ के गाँवों में नाचा कलाकार मदन निषाद की धूम थी। रात-रात भर स्वांग रचाकर नाचने-गाने की होड़ मचती। गोविन्दराम की रग-रग में दौड़ता कलाकार का खून उमगता और नाचा की उठती-गिरती गमक पर निहाल हो उठता। हसरत पूरी हुई। बन गए खुद भी नाचा कलाकार। राह पकड़ी तो जाने-माने कलाकार दाऊ मंदराज का आसरा भी नसीब हुआ। उनके साए में संभावनाएँ सँवरी। अभिनय ही नहीं, गाने और साज-बाज का शऊर भी पाया। सिलसिला बारह बरस तक चला। गोविन्दराम की प्रतिभा युवा होते-होते कुंदन की तरह दमकने लगी। तभी नाचा की एक महफिल का लुत्फ उठाने पहुँचे हबीब की नज़र निर्मलकर पर पड़ी। जैसे हीरे को जौहरी मिल गया। हबीब जी तब दिल्ली में 'नया थिएटर' के लिए कलाकारों का संग्रह कर रहे थे। राजधानी पहुँचकर उन्होंने गोविन्दराम को बुलावा भेजा तो गाँव वालों ने कहा- 'जाओ, तुम्हारी किस्मत का सितारा अब चमकने वाला है'। और धूल में खिला यह फूल सारे जहाँ में अपनी मटियारी गंध बिखेरने निकल पड़ा। चरणदास चोर, आगरा बाज़ार, सोन सागर, बहादुर कलारिन, हिरना

की अमर कहानी, जिस लाहौर नहीं बेख्या, लाला शोहरत राय, रुस्तम सोहराब, मिट्टी की गाड़ी, देख रहे हैं नैन, कामदेव का अपना वसंत ऋतु का सपना...। अनेक नाटक, अनेक भूमिकाएँ। देश-विदेश की अनेक उड़ानें। बेसाख्ता प्रशंसाएँ और पुरस्कार। कसम और भरोसा ऐसा कि 1960 में 25 बरस की उम्र में 'नया थिएटर' से जो नाता जुड़ा वह 2005 में जाकर इस वजह से टूटा कि देह अब विश्राम चाहती थी। आँखें कुछ पथराने लगी, कंठ थकने लगा, कमर झुकने लगी और पाँव लड़खड़ाने लगे। पिचहत्तर के मुहाने पर खड़े गोविन्द बाबा को लेकिन किसी से कोई शिकायत नहीं। अपने गुजिश्ता वक्त और हर किए पर नाज़ है।

दिल्ली के दरबार से पद्मश्री लेकर गाँव रवाना हुए तो भोपाल में ठिठक गए। पत्नी दुलारी बाई को भी संग लिए थे। म.प्र. की सरकार ने उन्हें दस साल पहले राष्ट्रीय तुलसी सम्मान से विभूषित किया है। पद्मश्री का तोहफा लेकर गोविन्दराम ने इस शहर में कदम रखा तो शुभकामनाओं का एक फूल भेंट करना भी सरकारी महकमे ने ज़रूरी नहीं समझा, लेकिन राजधानी की अर्घ्य कला समिति ने गांधी भवन परिसर के अपने परकोटे में जब गोविन्द बाबा का अभिनंदन प्रसंग आयोजित किया तो उनके कद्रदानों ने उनकी गोद फूलों से भर दी। 'नया थिएटर' के कलाकार आए तो बाबा के बड़प्पन के आगे सिर झुका दिया। निर्मलकर की आँखें भीग उठीं। गला रुंध गया। शब्द अक्सर तब भी चुप हो जाया करते हैं जब कहने को बहुत कुछ होता है। थोड़े में बहुत कुछ कह गए बाबा- 'पद्मश्री लेते समय भीतर से इतना नहीं पिघला था जितना यहाँ आकर बह निकला हूँ'।

कुछ नाटकों में गोविन्द के साथ अभिनय कर चुके युवा रंगकर्मी बालेन्द्र सिंह ने सवालों के ज़रिए उन्हें कुरेदा तो अनुभव की आँच में तपे कलाकार के जवाब भी सटीक थे- ''ज़िंदगी मुझे सदा नाटक की तरह लगी। सोचता हूँ, बीती को बिसार दूँ पर बार-बार उलझ जाता हूँ। असल जीवन में जो न बन पाया रंगमंच ने वो मौका दिया। मुझे याद आता है 'चरणदास चोर' का किरदार जो सदा सच बोलने का वचन अपने गुरु को देता है और उम्र भर उस कसम को निभाता है। मैंने नाटक ही नहीं, अपनी ज़िंदगी में भी सच का दामन थामा। सच्चाई में बड़ी ताकत होती है। हम सिर उठा के जी सके तो इसी सत्य के दम पर। अक्षर ज्ञान तो मेरे पास रहा नहीं पर अनुभव को ही ज्ञान मानकर उमर काट ली। यही काम आया। हबीब साहब ने हमें सब सिखाया पर (हँसते हुए) एक कला अपने पास रख ली- भाषण देने की। वो कमी आज तक अखरती है''।

उस दिन बातों-बातों में उन्होंने कई भूमिकाओं को याद किया। रंग-यात्रा के अहम पड़ावों से जुड़े दिलचस्प वाकये सुनाए। ....लगभग आधी सदी की इस सक्रियता के बाद अब निर्मलकर ने नाटक से एग्जिट ले ली है। अब नेपथ्य ही नियति है। स्मृतियों की झालरों से सजी जीवन की सांझ घिर आयी है। लेकिन जीवन के रंगमहल में तो नाटक सदा जारी रहता है। शो मस्ट गो ऑन....।

- विनय उपाध्याय

दिल्ली के दरबार से पद्मश्री लेकर गाँव (छत्तीसगढ़) रवाना हुए तो भोपाल में अपनों की मनुहार पर गोविन्दराम ठिठक गए। पत्नी दुलारी बाई को भी संग लिए थे। गांधी भवन में रचनाधर्मियों के साथ एक यादगार चित्र।

ग्यारहवाँ नाट्योत्सव

विश्व रंगमंच दिवस पर रंग आधार और वनमाली सृजन पीठ की साझा पहल

भारत भवन में ग्यारहवे रंग आधार नाट्योत्सव का शुभारंभ मध्यप्रदेश की शिक्षामंत्री अर्चना चिटनीस तथा कम्प्यूटर तकनीकी शिक्षा के अग्रदूत विज्ञानकर्मी तथा कवि कथाकार संतोष चौबे ने दीप प्रज्वलित कर किया

गुणकारी और बेहतर की तलाश का कारवाँ

मनोरंजन की आधुनिक इबारत के आसपास सिमटी रहने वाली हिलोरें नहीं, जहाँ उथले कलाबोध का बोलबाला और जश्न के नाम पर मौज-मस्ती के साजो-सामान सजे हों, ये उस उत्सव की तस्वीर है जहाँ परंपरा से रस लेकर जीवन की संघर्ष भूमि को सींचने के सपने और संकल्प रंगमंच पर अंगड़ाई लेते हैं। जहाँ सवाल हैं, संवेदनाएँ हैं, संवाद हैं, धूप-छाँही जिंदगी के अक्स हैं। किरदारों की बेचैनियों से निकलकर अवाम के सीने में भरोसे की उस ऊष्मा को रोंपने की फितरत है जिसका मकसद अंततः इस धरती पर मानवीय सौहार्द, शांति और समरसता की सनातनता को बचाए रखना है। पिछले एक दशक में भोपाल की रंगभूमि इसी रचनात्मक प्रतिबद्धता के साक्ष्य बटोरने के मकसद से जनता के प्रेक्षागृह में आने का सबब बनती रही है। विश्वरंगमंच दिवस (यानी 27 मार्च) इस बारह दिवसीय नाट्य उत्सव की परिकल्पना की पीठिका बना और इसके साथ मुसलसल जुड़तो गयी रंगकर्मियों और दर्शकों की सामूहिक इच्छा शक्ति। इस बहाने एक और महत्वपूर्ण पहलू इस गतिविधि के साथ जुड़ा **वनमाली सृजन पीठ** का, जिसने अपने समय के एक जरूरी और सार्थक सांस्कृतिक उपक्रम की जनतांत्रिक छवि को निखारने सहयोग का हाथ आगे बढ़ाया है।

रंग आधार नाट्य समारोह का यह ग्यारहवाँ सोपान बारह उन प्रस्तुतियों का कोलाज था जिससे आँखें मिलाकर अपनी समकालीन रंग ऊर्जा को जानने-परखने का अवकाश भी संभव था। अलखनंदन जैसे ज्येष्ठ और सक्रिय नाटककार-निर्देशक से लेकर मनोज नायर जैसे युवा और नवउत्साही रंगकर्मी के प्रयोगों से प्रत्यक्ष होकर यह भाँपने की गुंजाइश भी बनी कि हिन्दी रंगमंच पर नाट्य सृजन अब जनता के प्रति अपनी जवाबदेही को लेकर कितना गंभीरता है अथवा जिस प्रतिभा और परिश्रम की दरकार उससे दर्शक कर रहे हैं वह भला कितनी महफूज है। इन सवालों के आसपास बारह दिनों तक प्रत्यक्ष-परोक्ष बहसें जारी रहीं लेकिन भारत भवन की अंतरंग शाला के दरवाजे नाट्यप्रेमियों का रेला इस भ्रम को दूर करता रहा कि जीवन की आपाधापी में उलझी रहने वाली बिरादरी का स्वाद अब बदल गया है और उसकी फुरसतों पर बाजार ने पूरी तरह कब्जा कर लिया है। उम्मीदों का हराभरापन अभी काफूर नहीं हुआ है। रंग आधार का नाट्य प्रयोजन एक अर्थ में कला और रसिकों के बीच नए विमर्श का प्रस्ताव भी है।

उत्सव का आगाज़ करने उन दो शख्सियतों का आगमन हुआ जिनका सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर शिक्षा और कला से जीवंत सरोकार है। मध्यप्रदेश की शिक्षामंत्री श्रीमती अर्चना चिटनीस तथा कम्प्यूटर तकनीकी शिक्षा के अग्रदूत विज्ञानकर्मी तथा संस्कृतिकर्मी श्री संतोष चौबे ने बतौर अतिथि अपने उद्‌बोधन में नाटक की तालीम पर जोर दिया। समाज का जीवंत रिश्ता नाटक से हो इस ज़रूरत पर भी दोनों वक्ताओं ने जोर दिया। समारोह के सूत्रधार और रंगकर्मी राकेश सेठी ने रंगकर्मियों के अभ्यास के लिए शासकीय स्कूलों के परिसर सुलभ कराए जाने का आग्रह किया। शिक्षामंत्री ने उन्हें आश्वासन दिया। कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने रंग आधार नाट्य समारोह और भारतीय रंगमंच की प्रयोगधर्मी परंपरा पर प्रकाश डाला।

समारोह की पहली प्रस्तुति थी- **'अजात घर'**। करीब एक पखवाड़ा पहले ही वरिष्ठ रंगकर्मी अलखनंदन ने 'नट बुंदेले' के लिए रामेश्वर प्रेम के इस नाटक के तीन मंचन किए थे। दंगों के साथ जुड़ी दहशत का मानवीय संदेह में बदल जाने की त्रासदी को रेखांकित करता यह नाटक हालांकि किरदारों के अभी और पकने की मांग करता है। धीमी रफ्तार के साथ आगे बढ़ता कथानक हालांकि एक उत्तेजक बहस की शक्ल लेता है। फिर भी दर्शकों का संयम चुकता सा लगा। बिशना चौहान, प्रसन्न सोनी, शिल्पा और हेमन्त का अभिनय 'अजातघर' की आत्मा में उतरने की यथासंभव कोशिश करता रहा। मंच सामग्री और वेशभूषा प्रस्तुति की रंगत बढ़ाते हैं।

दूसरी शाम इलाहाबाद के अनिल भौमिक ने अपने निर्देशन कौशल की मिसाल गढ़ी- **'भुवनेश्वर-दर-भुवनेश्वर'** में। यह नाटक के भीतर नाटक की अनूठी परिकल्पना थी जिसमें पात्र के रूप में एक इंसान के भीतर एक दूसरे इंसान के अवतरित होने का यथार्थ चित्रण था। मीराकांत ने इस नाटक को गहरे चिंतन के बाद मनोवैज्ञानिक ढंग से रचा है। इस प्रस्तुति को दर्शकों का भी अप्रत्याशित प्रतिसाद मिला।

अतिथि प्रस्तुतियों के क्रम में तीसरी सभा जयपुर के शौकिया रंगसमूह क्यूरियो परफार्मिंग आर्ट सोसाइटी ने रौशन की। नाटक था - **'त्रियात्रा'**। निर्देशक गगन मिश्रा ने तीन कथाओं का कोलाज रचकर रंगपटल पर लेखक और पात्र की परस्परता का आत्मीय विवेचन किया। हालांकि अभिनय का कच्चापन और नेपथ्य के सूत्रों का शिथिल पड़ता अनुशासन प्रस्तुति को अपेक्षित प्रभाव नहीं दे पाया।

जबलपुर के 'विवेचना' नाट्य समूह से दर्शकों की अपेक्षा हमेशा की तरह कुछ नया और बेहतर पाने की रही है। इस बार वसंत काशीकर जैसे अनुभव पक्व रंगकर्मी ने शिरीष आठवले की कृति **'मित्र'** को चुनकर इंसानी रिश्तों की संवेदनशीलता को शिद्दत से उकेरा। कुल जमा पाँच चरित्रों के आसपास घूमता कथानक शुरू से आखिर तक सधी गति से चरम पर पहुंचता है। खुद काशीकर बतौर अभिनेता मंच पर पेश आए। महिला पात्रों में जरूर मेहनत की गुंजाइश बाकी लगी।

युवा निर्देशकों की आमद रंग आधार के उत्सव के लिए सदा से उम्मीदों से भरी रही है। पाँचवीं शाम अनूप जोशी बंटी ने अपने चर्चित नाटक **'प्लीज मत जाओ'** के जरिए बेहिसाब

'अजात घर' : निर्देशन अलखनंदन

'सुबह होने तक' : निर्देशन अशोक बुलानी

'प्लीज मत जाओ' : निर्देशन अनूप जोशी

'अस्तित्व' : निर्देशक मनोज नायर

प्रशंसा बटोरी। प्रेम और तिरस्कार के द्वन्द्व को जीता विजय तेंदुलकर का नाट्य आलेख अनूप ने जिस समझ के साथ प्रयोग में बरता है वह सामर्थ्य इधर युवा निर्देशकों में क्षीण ही है। मंच सज्जा से लेकर कविता और संगीत जैसे नेपथ्य के पहलुओं का संतुलित और सार्थक इस्तेमाल करते हुए उन्होंने मंच पर चरित्रों की कार्यवाही को खूबसूरती से पेंट किया। चन्द्रहास तिवारी, प्रीति झा और भावना के तलस्पर्शी अभिनय की ताकत पूरे नाटक को एक जीवंत कृति में बदल देती है।

'सुबह होने तक'। अशोक बुलानी निर्देशित यह नाटक कुछ जुमलों और लटकों-झटकों के कारण तालियाँ बटोरने में जरूर कामयाब रहा लेकिन नियमित भंगीर दर्शकों को इस प्रस्तुत ने निराश भी किया। पूर्वाभ्यास की कमी पात्रों पर साफ झलक रही थी। हालाँकि कलाकार नए और अनुभव के कच्चे नहीं थे। प्रवीण महूवाले, रीता वर्मा, के.जी. त्रिवेदी आदि वे नाम और चेहरे हैं जिनकी रंगमंचीय सक्रियता को एक मुद्दत हो चुकी है लेकिन निर्देशकीय कसावट और प्रबंध के ढीले सूत्रों के कारण प्रयोग अधपकी रचना साबित हुआ।

माइम (मूक अभिनय) रचनाओं के लिए मशहूर युवा निर्देशक मनोज नायर ने इस बार रंग आधार के लिए संवाद शैली का प्रयोग किया। अपने शैडो ग्रुप के शौकिया कलाकारों के साथ उन्होंने तैयार किया **'अस्तित्व'** यह नाटक स्त्री भ्रूण हत्या के त्रासद सवाल पर मार्मिक बहस छेड़ता है। दिलीप उमाकांत पाठक ने सामाजिक मुद्दे के साथ जुड़ी निर्मम मंशाओं को बेहद नाटकीय ताने-बाने से पेश किया है। नायर के निर्देशन की खासियत ये है कि वे समग्रता में मंचन को साधते हैं। मंच से लेकर नेपथ्य तक उनकी कार्यवाहियाँ नाटक को बेहतर अंजाम देती हैं। हालांकि स्त्री भ्रूण हत्या के आसपास उभरे वैचारिक उद्वेलन को कुछ दर्शकों ने सतही और बार-बार दोहराए जा चुके अखबारी विवरणों की संज्ञा दी फिर भी मनोज नायर के अपने निर्देशकीय मुहावरे की छाप दर्शकों से भरे खचाखच सभागार में देखी जा सकती थी। कमल जैन का सधा हुआ प्रकाश संचालन और वैसी ही तारतम्यता लिए मेघदीप बोस का ध्वनि संयोजन। अर्चना कुमार, अंकिता चक्रवर्ती, प्रियंका ठाकुर, गोदान और स्मिता नायर से लेकर एकता गोस्वामी तक अभिनय की कसावट भी देखते ही बनी।

रंगशीर्ष ने उत्सव को नई भंगिमा दी। संजय मेहता के पूर्व में मंचित चर्चित नाटक **'कांट पे वोंट पे'** को देखने इस दफा भी काफी दर्शक उमड़े। नोबल पुरस्कार से सम्मानित डारियो फो की कथा का रुपांतरण अमिताभ श्रीवास्तव ने किया है। महंगाई के शाश्वत हो चुके प्रश्न पर प्रहसन शैली में परिस्थितिजन्य हास्य पैदा करते हुए प्रस्तुति प्रेक्षकों की वाह-वाही लूटने में तो कामयाब रही लेकिन संवादों को लाउड होने से बचाया जा सकता था। सरोज शर्मा, संजय मेहता, प्रियंका की तिकड़ी ने अच्छा सामंजस्य बनाया।

नौवी शाम विष्णु प्रभाकर लिखित **'बंदिनी'** को मंच की कसौटी पर उतारा राकेश सेठी ने। अंधविश्वास के अंधेरे में भटकते समाज की रुहों में झांकता यह नाटक स्त्री की आंतरिक मनोभूमि को भी बखूबी छूता टटोलता है। सेठी ने गए बरस इस नाटक को स्टेट बैंक के राजभाषा नाट्य समारोह में पहली बार प्रस्तुत किया था लेकिन तब और अब में फर्क यह कि मुख्य किरदार निभाने वाले कलाकार ही बदल गए लेकिन नए कलाकारों ने भी यथाशक्ति न्याय ही किया। इस तारतम्य में प्रियंका ठाकुर, आलोक चटर्जी, अशोक बुलानी आदि के नाम लिए जा सकते हैं। पुनीत वर्मा का संगीत भी नाटक के प्रभाव को उकेरता है।

'कारवाँ' की पेशकश थी - **'सॉल्यूशन एक्स'**। बादल सरकार के इस बहुमंचित लोकप्रिय नाटक को नजीर कुरेशी ने अपनी पूरी टीम के साथ बेहतरी से बरतने का प्रयास किया। कहानी बुढ़ापे को काफूर करने वाली एक खोज की है जो एक वैज्ञानिक की फितरत है। यही फितरत पूरे नाटक में हास्य का कारण बनती है। उबेदुल्ला खान, कीर्ति चतुर्वेदी का अभिनय जेहन में ठहरता है।

ग्यारहवीं शाम बंसी कौल के निर्देशन में **'धोबीघाट से मसान घाट तक'** का मंचन हुआ। रंग विदूषक की इस दस्तक ने उत्सव को एक नई रंगशैली का स्पर्श भी दिया। अपनी पहचान के मुताबिक बड़ा टीम वर्क लेकर बंसी प्रस्तुत हुए इस नाटक में। नाटक भू-माफिया की बात करता है और इस बहाने राजनीति, प्रशासन और अपराध जगत की साजिशों का पर्दाफाश करता है। उदय शहाणे से लेकर नीति श्रीवास्तव और नवोदित रिदा वज़मी तक बहुपात्रीय संतुलन बैठने की कवायद आसान नहीं थी।

आखिरी शाम हबीब तनवीर की क्लासिक प्रस्तुति 'चरणदास चोर' को देखने हमेशा की तरह भीड़ जुटी। 'रंग आधार' के पिछले जलसे में हबीब जी अपने इस प्रिय नाटक के साथ मौजूद थे। इस बार उनकी बेटी ने संयोजन किया। यह हबीबजी के प्रति रंग आधार की विनम्र श्रद्धांजलि थी।

'गुलदी' का सुयश

'जब तक जीवित हूं बैले करती रहूंगी'

'मेरा काम ही मेरी पहचान'

'पद्मश्री से बड़ा सम्मान मेरे अपने लोगों का प्यार और उनका यह स्वागत है। मेरे लिए यह दुनिया के किसी अवॉर्ड से ज्यादा महत्वपूर्ण है।' पद्मश्री सम्मान लेकर दिल्ली से अपनी कर्मभूमि भोपाल लौटी रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप की महासचिव और प्रख्यात बैले कोरियोग्राफर गुलवर्धन (गुल दीदी) ने भाव भरे अंदाज में अपनों के प्यार का यह उत्तर दिया। 82 वर्षीय गुल दीदी ने बताया कि स्व. शांतिवर्धन और स्व. प्रभात गांगुलीजी के सपने रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप को आगे बढ़ाना मेरी पहली प्राथमिकता और जीवन का उद्देश्य है। जब तक शरीर में प्राण हैं, बैले नृत्य करती रहूंगी और रंगश्री के लिए ही जियूंगी। राष्ट्रपति प्रतिभा पाटील से मिलने को लेकर गुल दीदी ने कहा कि सम्मान लेते समय उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा, मुझे अच्छा लगा। एयरपोर्ट पर ढोल-ताशों की थाप पर नृत्य करते लोगों ने गुलदीदी का स्वागत किया। रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप को नई-नवेली दुल्हन की तरह सजाया गया। रंग-बिरंगी लाइटों से रोशन बैले ट्रुप के सभागार में शाम से ही बड़ी संख्या में लोगों का तांता लग गया था। गुलदीदी के आते ही आकर्षक आतिशबाजी और पुष्पवर्षा से स्वागत हुआ। वहां दीपावली जैसे उत्सवी माहौल था। गुलदीदी का द्वार पर पहुंचते ही गिरीश मोहन्ता और माधव बारीक ने आरती उतारकर अभिवादन किया।

पद्मश्री गुलवर्धन ने कहा...

➲ पुरस्कार मिलना न मिलना कोई मायने नहीं रखता। एक कलाकार के लिए उसका काम महत्वपूर्ण होता है और यही उसे पहचान दिलाता है। काम के प्रति पूरी ईमानदारी और मेहनत ही किसी को भी सफल बनाती है। मुश्किलें हर इनसान की जिंदगी में आती है, लेकिन घबराने की बजाय यदि धैर्य से काम लिया जाए तो कोई न कोई रास्ता निकल ही जाता है। आपके काम और आपकी आलोचना भी होगी, लेकिन खुद पर यकीन व काम के प्रति ईमानदारी का भाव हो तो आलोचक भी आपके मुरीद हो जाते हैं।

➲ मैं मुम्बई के एक सम्पन्न परिवार की बेटी हूँ और छोटी उम्र में ही आजादी की लड़ाई में भागीदारी की है। मेरे पिताजी मुठे स्पोर्ट्स के लिए प्रेरित करते थे तो माँ से मैंने संगीत और कलाकर्म की प्रेरणा हासिल की। मेरे लिए जितनी महत्वपूर्ण आजादी की लड़ाई रही, उतना ही महत्वपूर्ण रहा कलाकर्म। 1951 में लिटिल बैले ट्रुप बनाने का फैसला किया।

➲ काफी परेशानियों के बाद 'रामायण' बैले का काम शुरू हुआ। इस शो को अपार सफलता मिली और ट्रुप ने एक साल में रूस, चीन, जापान, हालैंड, अर्जेंटीना सहित कई देशों में सफलता के झंडे गाड़े। उन दिनों हमने स्पिरिट ऑफ इंडिया, इंडिया इस्मॉटल और पंडित जवाहरलाल नेहरू की पुस्तक पर आधारित बैले 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' बनाया। जिसे नेहरू जी ने भी खूब सराहा। मुझे आज भी याद है। 1957 में रूस में युवा महोत्सव होने वाला था, उसमें हमें भी जाना था, लेकिन आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि हम जा सकें। बिना शो के घूमने फिरने जाना हमारे वश का नहीं था। फिर शो भी मिल गए, लेकिन समस्या थी पासपोर्ट, वीजा, कपड़े और 'रामायण' तथा 'पंचतंत्र' बैले का ढेर सारा सामान। ऐसे में मैं तत्कालीन रक्षा सचिव कृष्ण मेनन से मिली, उन्होंने पूछा प्रोडक्शन तो तैयार है? मेरे कहने पर उन्होंने कहा बाकी सब हो जाएगा। जब हम मास्को जाने की तयारी कर रहे थे तभी जवाहरलाल नेहरू का पत्र आया, जिसमें उन्होंने जाने से पहले उनसे मिलने की बात कही थी। रूस जाने से पहले मैं उनसे मिलने गई तो उन्होंने पिता की तरह पूछा सब तैयारी ठीक तरह है। रवाना होने से पहले इंदिरा गाँधी ने प्रेस कॉन्फ्रेंस करवाई।

➲ लिटिल बैले ट्रुप 1984 में भोपाल पहुंचा और उसका नाम रंगश्री लिटिल ट्रुप हो गया। भोपाल से पहले हमने ग्वालियर को चुना, लेकिन वह पसंद नहीं आया और हमने भोपाल को चुना।

राज्य सरकार ने जमीन दी, जिस पर आज रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप का भव्य मंच बना है। मेरा सपना है यह रंगश्री बैले ट्रुप, जो कुछ कुछ साकार और कुछ कुछ निराकार है। मैं चाहती हूँ बैले और नाटकों के लिए प्रयोग, अनुसंधान और एक ऐसा स्कूल जिसमें प्रदर्शनकारी कलाओं के माध्यम से शिक्षण हो। एक बैले स्कूल, एक रंगकला म्यूजियम, बैले, थिएटर, बच्चों के शिविर, अभिनय, नृत्य आदि की सघन व्यवस्था हो।

➲ मेरा शुरू से मानना रहा है कि अपने काम प्रति ईमानदार रहें तो सफलता जरूर मिलती है। ईमानदार प्रयास और मेहनत का कोई विकल्प नहीं है। हमारा काम ही हमारी पहचान होता है और यही हमारे सपनों को पूरा करता है। पुरस्कार या सम्मान एक कलाकार के लिए मायने नहीं रखते, बल्कि उसके लिए काम महत्वपूर्ण होता है। पद्म पुरस्कार मिला तो खुशी हुई, लेकिन किसी को देर से मिलना या किसी को देने में जल्दबाजी करना, यह सब सोचना हमारा काम नहीं है। हम कौन होते हैं यह सब सोचने वाले। हमें अपने काम पर ध्यान देना चाहिए।

➲ हर किसी के जीवन में मुश्किल का दौर आता है और यही हमें अपनी शक्ति का अहसास कराता है। लिटिल बैले ट्रुप की स्थापना के बाद जब शांतिवर्धन नहीं रहे, समय मैं और साथी कलाकारों को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें और कैसे करें। ऐसे समय में इंदिरा गाँधी ने थोड़ी हिम्मत और हौंसला बंधाया। फिर हम सबने शांतिबर्द्धन जी का सपना पूरा करने का संकल्प लिया और चल पड़े। मैं यह कहना चाहती हूं कि मुश्किल समय में धैर्य से काम लिया जाए तो कोई न कोई रास्ता निकल ही जाता है।

बैले ने भी बजाया था
जागरण का बिगुल

देश को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त कराने में कुछ लोगों ने क्रांति का मार्ग अपनाया तो कुछ अहिंसा के सहारे आजादी चाहते थे, जिन्होंने अपनी कला, संस्कृति के माध्यम से भारतीय जनता को जागरुक करने का बीड़ा उठाया। अपने नाटकों की सशक्त प्रस्तुतियों द्वारा ये कलाकार जन-जन तक आजादी का बिगुल फूँकना चाहते थे। बैले की दुनिया में यह एक जाना पहचाना नाम है -गुलवर्धन लेकिन कम ही लोगों को शायद इस बात की जानकारी होगी कि बैले का उनका यह सफर स्वतंत्रता संघर्ष में भी जारी था।

उन्होंने ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों को करीब से देखा है। उनके पिता कांग्रेस के सक्रिय सदस्य थे, इसलिए उनके घर में आजाद भारत की तस्वीर देखी जाती थी। आए दिन होने वाली सभाओं, बैठकों, आंदोलनों में गुलवर्धन भी अपने पिता के साथ शिरकत करती थीं, इन सब बातों ने उनके बाल मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला। छोटी उम्र में ही गुलवर्धन को एक्टिंग और चित्रकारी का शौक हो गया था। उनके द्वारा बनाए गए तमाम चित्रों में गुलामी की पीड़ा, दर्द और क्षोभ होता था। उन दिनों इंडियन पीपुल थिएटर की देश में धूम मची हुई थी। उनकी प्रस्तुतियों से प्रभावित होकर गुलवर्धन ने इस संस्था की सदस्यता ले ली। शांतिवर्धन के निर्देशन में इंडियन पीपुल थिएटर देश भर में घूम घूमकर अपनी नृत्य नाटिकाओं का प्रदर्शन करता था। संस्था का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों से लोगों को अवगत कराने के साथ साथ आजाद भारत की सुखद तस्वीर साकार करना था।

वर्ष 1944 में गुलवर्धन ने नर्तकी के तौर पर इस संस्था में प्रवेश किया। 28 सदस्यों वाले इस दल में मात्र 6 महिलाएँ थीं। बलराज साहनी, ख्वाजा मोहम्मद अब्बास, दीना पाठक जैसी हस्तियाँ गुलवर्धन के साथी कलाकार थे। इस थिएटर द्वारा प्रस्तुति इंडिया इमोटल और स्प्रिट ऑफ इंडिया की खूब धूम मची। देश ही नहीं बल्कि विदेशों में भी इसके कई प्रदर्शन हुए। गुलवर्धन बताती हैं कि इन दोनों नाटकों का हर शो हाउसफुल रहता था। पंडित नेहरू, सरोजिनी नायडू सहित अन्य नेताओं ने भी इनकी प्रस्तुतियों को प्रोत्साहित किया। क्रिस्प कमीशन ने अपने भारत प्रवास के दौरान इन नृत्य नाटिकाओं को देखा और सराहा था। गुलवर्धन यादों को टटोलते हुए बताती हैं उस दिन हमारी प्रस्तुति में दिखाया गया था कि जिस तरह समुद्री जहाज में सवार होकर अंग्रेजों ने भारत भूमि में प्रवेश किया था। उसी तरह समुद्री मार्ग से ही उन्हें देश से बाहर खदेड़ा जा रहा है। 1946 के शुरुआती दौर में शांतिवर्धन पंडित नेहरू की पुस्तक डिस्कवरी ऑफ इंडिया के काम में व्यस्त हो गए और उनका थिएटर टूट गया। इस दौरान गुलवर्धन ने अपनी अभिव्यक्ति को चित्रों में उकेरने का सिलसिला जारी रखा। सरोजनी नायडू की छोटी बहन प्रख्यात चित्रकार सुहासिनी ने उन्हें चित्रकारी के नए गुर सिखाए। उनके प्रोत्साहन और प्रयास से गुलवर्धन ने वर्ष 1947 में प्राग में हुए पहले युवा उत्सव में देश का प्रतिनिधित्व करने का अवसर मिला। 'माय कन्ट्री माय पीपुल' नामक प्रदर्शनी लेकर गुलवर्धन प्राग गई। इस प्रदर्शनी में अंग्रेजों द्वारा हिन्दुस्तानी

जनता पर किए जा रहे अत्याचार, दुराचार और शोषण को चित्रों के माध्यम से दर्शाया गया था, इसके अलावा भारत की संपन्न और समृद्ध संस्कृति कला और परंपराओं का प्रदर्शन किया गया था। इस दौरान करीब दो सालों तक गुलवर्धन से पूर्वी यूरोप की सेकेंड ब्रिगेड में भी काम किया। वर्ष 1949 में गुलवर्धन जब भारत लौटी तब तक देश की फिजा बदल गई थी, देश में आजादी की बयार चल रही थी। आजाद भारत में 1952 में गुलवर्धन ने शांतिवर्धन के साथ मुंबई में लिटिल ट्रुप की नींव रखी। भारतीय संस्कृति, परंपरा और कला को सात समुंदर पार तक पहुंचाने में इस ग्रुप का खासा योगदान रहा। पंचतंत्र, रामायण जैसी धार्मिक और पारंपरिक गाथाओं को इस ग्रुप ने नृत्य नाटिकाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। देश में ही नहीं विदेशों में भी इन प्रस्तुतियों ने खासी शोहरत बटोरी। गुलवर्धन द्वारा फिल्मों में नृत्य प्रस्तुतियों का सिलसिला आजादी के पहले ही शुरू हो गया था। धरती के लाल, समाज को बदल डाली, रामराज, बंधन, आवारा, सुजाता सहित कई फिल्मों में गुलवर्धन को काम करने के अवसर प्राप्त हुए।

वर्ष 1964 में यह ग्रुप मुंबई से ग्वालियर आ गया और इसका नाम हो गया रंश्री बैले ट्रुप। लगातार 19 सालों तक ग्वालियर में रहने के बाद 1984 में इस ग्रुप ने भोपाल में शिरकत की। तब से भोपाल ही इनकी कर्मभूमि हो गई। अब भी गुलवर्धन इस ट्रुप की प्रस्तुतियों में सक्रिय योगदान देती हैं। कोरियोग्राफी के साथ-साथ वेशभूषा सभी विधाओं पर विशेष ध्यान देती हैं। रामायण, महाभारत पर आधारित उनके अनेक शो देश के विभिन्न क्षेत्रों के साथ साथ विदेशों में भी हो चुके हैं। गुलवर्धन की कला को देश विदेश में बराबर सम्मान भी मिला है। रूस, फ्रांस, लेबनान, चीन, नेपाल थाईलैंड सहित अन्य देशों से उन्हें पुरस्कार और अवार्ड मिले हैं। इसके साथ संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार शिखर सम्मान के अलावा अन्य ढेरों पुरस्कारों से गुलवर्धन सक्रियता से अपने ग्रुप से जुड़ी हैं। पिछले दिनों प्रस्तुत स्वतंत्रता आंदोलन संबंधी नृत्य नाटिका को काफी सराहा गया। अन्य नृत्य नाटिकाएँ भी प्रशंसित रहीं। नृत्य नाटिका में स्वतंत्रता संघर्ष को दर्शाया गया है। गुलवर्धन कहती हैं- 'आज की पीढ़ी को यह अवश्य जानना चाहिए कि स्वतंत्रता के लिए लोगों ने किस तरह संघर्ष किया। (स्वराज संदर्भ)

अपनों ने दिया सम्मान

'मेरे आंगन में लगी भीड़ किसको कितना मैं प्यार करूँ।' भोपाल के श्यामला हिल्स स्थित रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप का परिसर श्रद्धा और आत्मीयता के अछोर सैलाब से कुछ ऐसा ही हिलोरे ले रहा था। नाट्य समूह रंग विदूषक और सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की पहल पर विश्वख्याति प्राप्त कोरियोग्राफ बुजुर्ग रंगकर्मी सुश्री गुलवर्धन और बैले ट्रुप के ही वरिष्ठ कलाकार श्री कन्हैयालाल कैथवास को बधाई तथा शुभकामनाएँ देने राजधानी का कला जगत उमड़ा। सबकी स्नेहिल गुलदी को हाल ही देश के सर्वोच्च नागरिक अलंकरण पद्मश्री और कन्हैया को राष्ट्रीय कबीर सम्मान की घोषणा से एक बार फिर भोपाल की रंग साधना गौरवान्वित हुई है। अपनों के बीच अभिनंदन और सम्मान की सौगात से अभिभूत गुलवर्धन ने कहा 'मेरे लिए सम्मान की अहमियत इतनी है कि बैले जैसी विधा को आज भी रंगमंच की एक जरूरी कला के रूप में प्रतिष्ठा मिल सकी। इस सम्मान में अकेले मेरा नहीं, पूरे बैले ट्रुप के समर्पण और साधना का हिस्सा है। उन दर्शकों कला प्रेमियों का भी जिनका अपार समर्थन और प्यार हमारी प्रस्तुतियों की पूँजी बन सका। मैं इस जन्म का अधूरा काम अगले जन्म में पूरा करूँगी।' समारोह में रंग विदूषक के बाल रंगकर्मियों ने गुलदी को शुभकामना संदेशों से भरा एक वृहद् कैनवास भेंट किया जबकि नाट्य संस्थाओं नट बुंदेले, दोस्त, इफ्तेखार नाट्य अकादमी, नवनृत्य नाट्य संस्था, प्रयोग, शैडो ग्रुप, मधुकली, वनमाली सृजन पीठ, सरोकार, जनवादी लेखक संघ आदि के प्रतिनिधियों तथा कलाकार साहित्यकारों ने दोनों कलाकारों का गुलदस्तों से स्वागत किया।

रंगमंच पर कविता

हमारे सुदूर अतीत में भी कविता और कला की अंतरंग सोहबत से पाठक रसिकों का संकुल तैयार होता रहा। जिसे हम मौखिक, वाचिक, श्रुति या पाठ परंपरा कहते आए हैं, कविता उसी नाव पर तैरती लोक की वैतरणी पार करती रही है। इस परंपरा ने सदा ही नए प्रभावों को आत्मसात किया और सुविचारित ढंग से समाज को संस्कारित करने तथा कविता के प्रति गहरी प्रीति जगाने में जिम्मेदार भूमिका निभाई। इधर बीच के बरसों में कविता के पाठ के लेकर, नए कलात्मक रिश्तों को लेकर, नई पीढ़ी के बदलते रुझान और आस्वाद के आग्रहों को लेकर शिक्षा और संस्कृति के रहनुमाओं ने योजनाबद्ध ढंग से कोई कारगर पहल की हो, मालूम नहीं। इस अंधेरे में उम्मीद भरी लौ शौकिया रंगमंच ने जरूर दिखाई है। सीमित संसाधनों के बावजूद उसने अपने आँचल में कविता को आश्रय दिया खासकर विषय, विचार और शिल्प के नए ताने बाने के साथ जिस कथित छन्दविहीन नई कविता का अवतरण हुआ उसे किताबी दायरे से बाहर वाचिक अभिनय के जरिए जनता के बीच ले जाने का उत्साह गैर पेशेवर रंगकर्मियों ने दिखाया है। कविता के पाठ प्रयोग की प्रस्तुतियों का चलन बढ़ा है। स्वीकारने और नकारने के तर्क वितर्कों के बीच नई बहसों ने जन्म लिया है। लेकिन लगभग निर्वासित और बेजार हो रही आधुनिक कविता की कला के परिसर में यह आमद भरोसा तो जगाती ही है। मिसाल हिन्दी के यशस्वी कवि संतोष चौबे की कविताओं की हाल ही भारत भवन, भोपाल में हुई पाठ प्रस्तुति है। बहुआयामी और निरंतर सृजन सक्रिय युवा रंगकर्मी संजय मेहता ने चौबे के नवप्रकाशित काव्य संग्रह 'कोना धरती का' और 'इस अ-कवि समय में' से 26 कविताएँ चुनकर छात्र वय के कलाकारों के जरिए उन्हें साभिनय प्रस्तुत किया। निश्चय ही यह चौबे की कविताओं का पुनर्जन्म था लेकिन एक नए रागात्मक सूत्र और आनंद की अपार ऊर्जा से सभागार भरा था। यहाँ कहीं-कहीं शब्दों के अशुद्ध उच्चारण, सतही पाठ और दृश्य की परिधि में ठीक से उनके न बाँध पाने की बाकी रही कसर पर प्रदर्शन के बाद कवि आलोचकों के बीच बहसें भी हुई लेकिन रंगकर्म और कविता के बीच रचनात्मक छटपटाहट और चुनौतियों से पार जाने की जिजीविषा को तो साधुवाद ही मिला। लगभग चार सौ प्रेक्षकों से भरी अंतरंग शाला में एक चौथाई तादाद उन तरुणों की थी जिनमें से अधिकांश सूचना प्रौद्योगिकी या विज्ञान के स्नातक बनने मध्यप्रदेश या पड़ौसी प्रदेशों के नगर कस्बों से आए हैं। खुद कवि संतोष चौबे के लिए यह विस्मय और प्रसन्नता से भरा अनुभव था कि तकनीक की तालीम ले रहे इन छात्रों ने न केवल पेश की जा रही कविताओं को धीरज और रुचि से सुना बल्कि प्रस्तुति के दौरान ठीक मुकाम पर स्वतः स्फूर्त तालियों से कविता के प्रति अपनी समझ का साक्ष्य भी दिया। चय तो यही है कि कविता से आत्मीय परिचय की पहली सीढ़ी उसका पाठ है।

यह शुभ संकेत है कि अपनी-अपनी हदबंदियाँ तोड़कर साहित्य और कला की विधाएँ एक दूसरे से गलबाहें कर समाज को संबोधित होना चाहती हैं। मकसद यही कि समाज से उठाया कोई विचार, घटना, स्मृति या अनुभव पूरे ताम के साथ समाज में जाए और सर्जक का निजी चिंतन समूह को भी आन्दोलित करे। बात भोपाल की, तो रंगभूमि पर हो रहे प्रयोगों ने खासा ध्यान बाँटा है। नई कविता के रंगमंच ने दिलचस्पी के आयाम रछते हुए वृहद विरादरी अर्जित करने में बाजी मारी है।

आधुनिक हिन्दी रंगमंच के आसपास बात करते हुए थोड़ा पीछे जाएँ तो भोपाल में कविता और मंच की नातेदारी का सिलसिला रंगमंडल भारत भवन ने शुरू किया। ज्येष्ठ रंगकर्मी अलखनंदन ने हिन्दी के सुप्रतिष्ठित कवि श्रीकांत वर्मा की रचनाओं के साथ अगुवाई की। रंगकर्मी जयंत देशमुख मुक्तिबोध की कविताओं को लेकर नए नाटकीय तेवरों के साथ प्रकट हुए। उत्साह और जागृति के इस माहौल

में राजीव गोहिल ने कविता का मंचीय प्रयोग किया। बीच के कुछ बरस खामोशी में डूबे रहे, लेकिन हिन्दी कविता का हाथ थामकर उसे पुनः रंग परिसर में लाने का साहस संजय मेहता ने किया। अपने नाट्य समूह 'रंगशीर्ष' के लिए उन्होंने बाकायदा कविता की पाठ प्रस्तुति के शोध, अन्वेषण और मंच का अबाध सिलसिला शुरू किया। म.प्र. की साहित्य अकादमी के आयोजनों में भी कविता के आस्वाद और सम्प्रेषण की नई जगह बनीं। प्रदेश के ही जनसंपर्क संचालनालय ने 'कविता में मध्यप्रदेश' शीर्षक धारावाहिक प्रस्तुतियों के अवसर 'रंगशीर्ष' को मुहैया कराए। कविता और रंगमंच की परस्परता से जुड़े वैचारिक और तकनीकी पहलुओं पर एक वृहद विमर्श भी पिछले दिनों संजय मेहता के संयोजन में ही भोपाल में हुआ। एक अन्य सफल प्रयोग 'कविता यात्रा' भी काफी चर्चित रहा। संतोष चौबे द्वारा चयनित समकालीन हिन्दी कवियों की रचनाओं को मनोज नायर ने अनूठी रंग चेतना दी। वहीं रंगकर्मी ब्रजेश अनय ने मालवा के कवि प्राण वल्लभ की कविताओं को नाटकीय सूत्रों में विन्यस्त किया। इधर, आलोक चटर्जी ने कविता और गद्य की कई विधाओं के नियमित पाठ की ओर रुख किया है। ...अब सवालों का उठना भी लाजिमी है। कविता के चयन को लेकर, उसके रचनागत ढाँचे को लेकर, उसके जनपद, उसकी वैचारिक, भविक उष्मा को लेकर, उसके प्रति उठ रही नाटकीय और नियमित विमर्श की दरकार है। निश्चय ही खुली आलोचना से प्रयोगधर्मिता का परिष्कार होगा।

- विनय उपाध्याय

कहानी में नैरेशन

सबसे बड़ी समस्या कहानी को मंच पर प्रस्तुत करने में उसका नैरेशन पक्ष ही है। संवाद तो अपने आप में एक दृश्य बनाते ही हैं। यदि कोई स्मृति का दृश्य कहानी में है और उसमें बोला हुआ कोई शब्द नहीं है मूल कहानी में। वह तो पात्र को याद आ रहा है। सवाल यह है कि मंच पर उसे अगर बोला जा रहा है तो कौन बोल रहा है? अगर हम उसको बोल रहे हैं तो उस स्मृति में जो घटित हो रहा है, वह दर्शकों तक कैसे पहुंचे? इसके लिए बहुत सुविधाजनक युक्तियाँ मौजूद हैं। आप चाहें तो उसको फिल्म के दृश्य में ले लें, चाहे स्लाइड में ले लें, चाहे रिकॉर्डेड वॉयस में ले लें, बहुत से रास्ते मौजूद हैं। लेकिन इन सबसे अलग, जैसी मैंने कोशिश की पात्रों की स्मृति को याद करना। आवाजहीन होते हुए भी उसमें एक आवाज रहती है, जो हमारे अंदर कहीं घटित हो रहा है। अंग्रेजी में इसके लिए एक शब्द है लाऊड थिंकिंग, अर्थात् जोर-जोर से सोचना। यह क्या है? कहीं हम इसे आवाज की ही तर्ज में परिभाषित करते हैं तो इसका एक सीधा रास्ता निकला और इसने अभिनेताओं के लिए दो तरह की संभावनाओं को उजागर किया। एक तो वह वर्तमान में मौजूद हो और दूसरे पीछे भी लौट जाए। वह चरित्र भी हो और उसी वक्त अपने ही ऊपर टिप्पणी भी कर रहा हो। इसीलिए ज्यादातर अगर तीसरे पुरुष में कहानी लिखी गई है तो मुझे बहुत कम जरूरत बड़ी कि मैं उसको परिवर्तित करके प्रथम पुरुष में लाऊँ। यह अनुभव कुछ-कुछ ऐसा ही है जैसे कई बार हम दर्पण के सामने खड़े होकर अपने आपसे ही संवाद करते हैं। यह जो कुछ कहना है, यह किससे कहना है? तीसरे व्यक्ति के रूप में मैं बोल रहा हूँ अपने आपसे बातचीत कर रहा हूँ। फिर हम लोगों ने बहुत सी अलग-अलग तरह की कोशिशें करके भी देखा। पहले से कोई बना बनाया रास्ता शायद आज भी नहीं है। उन कहानियों में कोई मुश्किलें नहीं पड़ती, जो बहुत ज्यादा प्रथम पुरुष में लिखी गई हैं। ज्यादा दिक्कत है जो कि तीसरे पुरुष में लिखी गई हैं और जहाँ पर मूलतः लेखक की उपस्थिति बहुत अहम है। वह लेखक सूत्रधार के रूप में मुझे स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि तब आप उसका एक बहुत आसान रास्ता ढूंढ लेते हैं। उस लेखक के अस्तित्व को, जैसे मैं आपसे बातचीत कर रहा हूँ बातचीत करते-करते मैंने उसी कहानी का नैरेशन सुनाने की तरह संवाद के रूप में बोलकर आपसे शेयर कर लिया। फिर तीसरी कोशिश यह है कि सीधे अपने ही बारे में थर्ड पर्सन के रूप में अभिनेता ने सुनाया और उसके बाद जो भी दृश्य है, उसमें वह पात्र खुद हिस्सा लेने लगा। यह भी एक कोशिश है। कहने का अर्थ यह कि उस नैरेशन के कितनी ही तरह ट्रीटमेंट हो सकते हैं। और कहीं इस पर भी निर्भर करता है कि आपके पास अभिनेता कितने हैं? आप पहले से ही यह तय करके जाते हैं कि आप प्रस्तुति करने जा रहे है और रचना के हिसाब से तो पचास लोगों की जरूरत है। मगर आपके पास उस संस्था में सिर्फ पाँच ही अभिनेता हैं। तो इस तरह की व्यवहारिक कठिनाइयाँ भी कई बार यह तय करती हैं कि उस नैरेशन के साथ क्या सलूक होगा? **-अंकुर**

नेपथ्य

मंच पर नहीं कहा जा रहा जो
ऐसा नहीं कि वह है कम महत्वपूर्ण
या उसका प्रभाव नहीं है तीव्र

बहुत बार ऐसा होता है
कि मंच पर कहना जिसे होता है दुरुह
या कह देना नहीं होता चलन के अनुरूप
वहाँ नेपथ्य कथन से ही
जुड़ पाता है जीवन लय का तारतम्य

बहुत बार ऐसा भी होता है
कि मंच कथन दिखावे भर का होता है
असल काम कर रहा होता है
नेपथ्य का ही कोई वाक्य

वैसे भी हमारे जीवन में
रोना कहना हँसना
सब नेपथ्य में ही होते हैं पूरम्पूर
मंच पर तो दिखावट की भरमार है

नेपथ्य न होता तो कितने गूँगे होते हम
और मंच पर होता कितना और शोर
नेपथ्य के परे
प्रेम या पीड़ा में कितने नकली होते हम

चेहरों की पहचान
कितनी कमजोर होती हमारी
नेपथ्य के बिना

नेपथ्य के बिना
अपनी रचनाओं में भी
जीवन से होते कितनी दूर हम।

-प्रेमशंकर शुक्ल

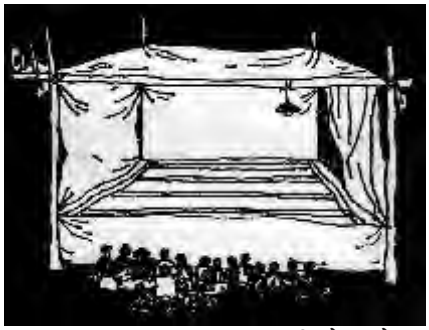

किशोर उमरेकर

वनमाली सृजन पीठ के आयोजन

परंपरा के नए अर्थ खोलती कविताएँ

परम्परा को सहेजती, सँवारती कविता हमारे अनुभव संसार को समृद्ध ही नहीं करती, मनुष्यता को पोसने में अहम भूमिका भी निभाती है। ज्यादातर, वर्तमान कविता का मध्यमवर्ग पर पहुँचकर ठहर जाना, एक बड़ी त्रासदी है। शब्दों के चटीले रंग-रोगन के बजाए सर्वहारा तक सतत प्रवहमान कविता समय के समूचे यथार्थ को प्रकट करती है। चुनौतियों को अपनी कसौटी बनाने वाली रतन चौहान की कविताएँ इस लिहाज से श्रेष्ठता का नया आयाम गढ़ती हैं और हमारे ज्ञानात्मक मानचित्र में बदलाव की पहल करती हैं। बिलाशक, 'तुरपई' आमजन की फटेहाली पर महीन तुरपई करती है।

समकालीन कविता के परिसर में अपनी नई कौंध जगाती श्री रतन चौहान की कृति 'तुरपई' का लोकार्पण प्रसंग उक्त विमर्श के साथ एक सार्थक समागम साबित हुआ। हिन्दी के दिवंगत यशस्वी कथाकार-चिंतक जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' की याद में स्थापित **वनमाली सृजन पीठ** द्वारा संयोजित इस समारोह में वरिष्ठ आलोचक प्रो. कमला प्रसाद, प्रसिद्ध कवि-आलोचक राजेश जोशी, चर्चित कथाकार-कवि संतोष चौबे, कवि बलराम गुमास्ता तथा राग तेलंग ने 'तुरपई' को जारी करने के साथ ही संग्रह की गहरी मीमांसा की। आयोजन में साहित्य संस्था सरोकार तथा पहले-पहल ने रचनात्मक भूमिका निभाई। स्वराज संस्थान में हुए इस कार्यक्रम का संचालन सृजन पीठ के संयोजक श्री विनय उपाध्याय ने किया।

सामाजिक विद्रुपता पर कटाक्ष और आमजन की फटेहाली पर स्नेह और करुणा की महीन तुरपई करती संग्रह की चार दर्जन कविताओं में से श्री रतन ने पाठ के लिए ग्यारह कविताएं चुनी। आलोचक श्री कमला प्रसाद के मुताबिक, 'तुरपई' में मौजूद स्थानीयता पुरानी परम्परा का स्थापत्य है। वैभव में लिपटी परम्पराएं स्मृतियों में उछलकूद कर अपने समय का परिमार्जन करती हैं, जबकि तरसने की परम्परा में यथार्थ की गूंज साफ सुनाई देती है।

आधुनिक हिन्दी कविता के यशस्वी हस्ताक्षर श्री राजेश जोशी की अध्यक्षीय टिप्पणी में 'तुरपई' के बहाने मौजूदा कविताई परिदृश्य की पड़ताल नजर आई। कॉस्मिक इमेजरी को ये कविताएं रिअलिटी से जोड़ती हैं। मालवी के यथार्थवादी रंगों से सराबोर 'तुरपई' कथात्मक न होकर उपाख्यान है जो परम्परा के नए अर्थ खोलती है।

सुप्रतिष्ठित कवि, उपन्यासकार तथा सृजनपीठ के अध्यक्ष श्री संतोष चौबे ने श्री रतन को शब्दों का ऐसा चित्रकार बताया जो चटक रंगों को दरकिनार कर धूल, धूसर और धुंआई रंगों से आमजन का वास्तविक चित्र बनाता है। परिधि से केन्द्र की ओर जाती श्री रतन की कविता तमाम तरह के छिलकों को उतारकर मूलतत्व तक पहुँचती है। फिर, केन्द्र से निकल ऊँचाई के उस बिन्दु को साधती है जहाँ का उच्चतर घनत्व कविता को ज्यादा सम्प्रेषणीयता देता है। कवि बलराम गुमास्ता ने टिप्पणी में कहा- 'हिन्दी की जातीय चेतना को समर्थ करती 'तुरपई' की कविताएँ हमारे अनुभव संसार को समृद्ध करती हैं। कवि राग तैलंग के अनुसार 'तुरपई' की कविताएँ सच के करीब खड़ी दिखाई देती हैं। जहाँ श्रमिक वर्ग की एक्स-रे इमेज उजागर होती है।

शुरू में मुकेश वर्मा (सरोकार), महेन्द्र गगन (पहले-पहल), शैलेन्द्र शैली (राग भोपाली) कविद्वय प्रेमशंकर शुक्ल तथा किशन तिवारी और संतोष कौशिक ने श्री रतन तथा उनके साथ रतलाम से पधारे लेखक श्री पदमाकर पागे का पुष्पदलों से स्वागत किया।

-वसंत सकरगाए

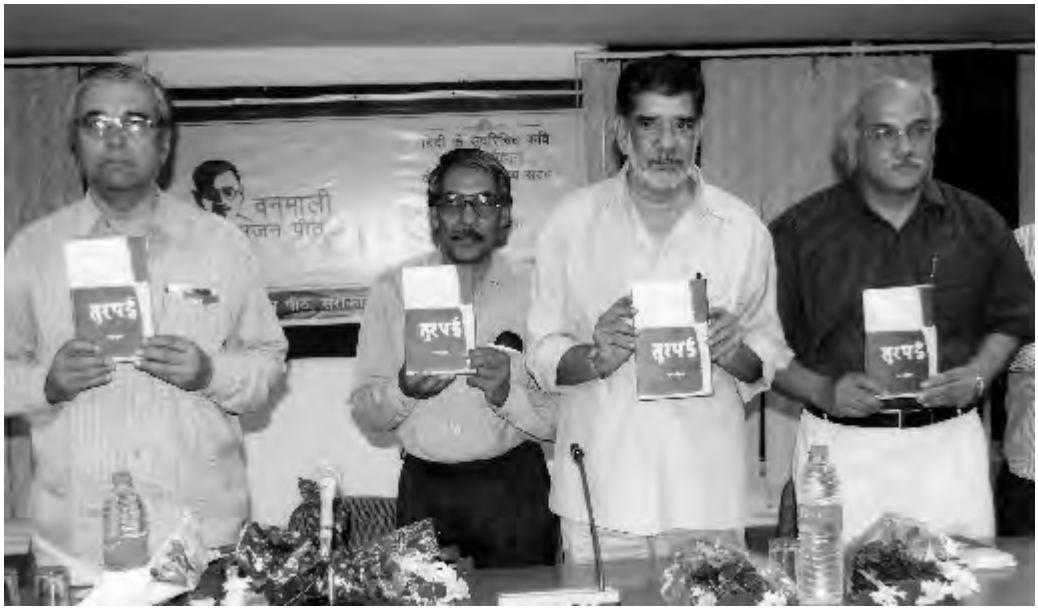

कवि रतन चौहान की कविता कृति 'तुरपई' का लोकार्पण करते हुये आलोचक प्रो. कमला प्रसाद, कवि-आलोचक राजेश जोशी, कथाकार-कवि संतोष चौबे।

दृश्य-छवियों में बंधा भक्ति संगीत

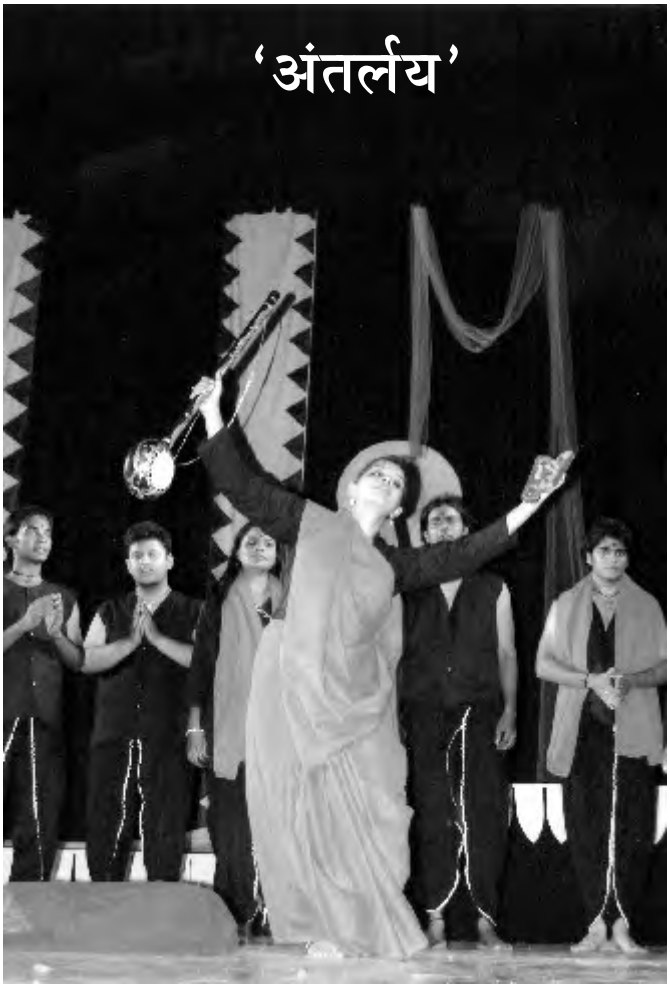

भक्ति संगीत के अमृत कलश से झरते आध्यात्मिक आनंद और लोकधर्मी आस्थाओं के भाव स्वरों को आत्मसात करने भोपाल के रवीन्द्र भवन में **वनमाली सृजन पीठ** ने रसिकों को 'अंतर्लय' की अनूठी दावत दी। परंपरा के आंगन में झरते सुर-ताल और लय के छंदों को दृश्य छवियों में बंधा देखने का यह एक विस्मयकारी प्रयोग था। लोक संगीत संवेदना की धनी स्व. श्रीमती शारदा चौबे के संग्रह से चुने करीब २० भजनों को रंगमंच के फलक पर प्रसिद्ध रंगकर्मी श्री मनोज नायर ने अपने कला दल के साथ प्रस्तुत किया। वरिष्ठ कवि-कथाकार श्री संतोष चौबे द्वारा परिकल्पित 'अंतर्लय' को पारंपरिक मौलिक धुनों में सजा संवार कर पेश किया सुपरिचित संगीतकार श्री संतोष कौशिक ने। विषय वस्तु को संवाद की रोचक शैली के साथ दर्शक-श्रोताओं तक कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने पहुंचाया। इस मौके पर हिन्दी के सुप्रतिष्ठित कवि श्री भगवत रावत, मध्यप्रदेश के संस्कृति मंत्री श्री लक्ष्मीकांत शर्मा, तकनीकी संस्थान आईसेक्ट के महानिदेशक श्री संतोष चौबे ने आईसेक्ट स्टुडियो द्वारा श्रीमती शारदा चौबे के लोक स्मृति से जुड़े २६ भजनों के संगीतबद्ध चार सी.डी. एलबम लोकार्पित किये।

सावन से भीगी वादियों में लोकगंधी भक्ति गीतों की गुंजार ने एक नये प्रेरणादायी कलात्मक अहसास का स्पर्श दिया। संगीत, अभिनय, नृत्य और उसके साथ भाव भरे सूत्रों को थामकर 'अंतर्लय' ने दरअसल उस सच्चे और खरे आनंद को उकेरने की कोशिश की जो सदियों से भारतीय लोक मानस से अपना रुहानी रिश्ता बनाये हुये है। अपने उद्‌बोधन में श्री संतोष चौबे ने इस प्रस्तुति की अवधारणा साफ करते हुए कहा कि दुर्भाग्य से पारंपरिक भजन आज बाजार के उन्माद का शिकार हो गए हैं। पवित्र भावनाओं के बदले फूहड़ शब्दों और शोर भरे बेजान संगीत का बोलबाला हो गया है। 'अंतर्लय' एक अर्थ में परंपरा और आधुनिकता के बीच नये रचनात्मक विमर्श की शुरुआत भी माना जा सकता है। श्री भगवत रावत ने 'अंतर्लय' के इस अनोखे प्रयोग तारीफ करते हुए साहित्य और कला की सदाशयी सोहबत जारी रखने की अपेक्षा की। कार्यक्रम के सहयोगी संस्थान आईसेक्ट तथा स्कोप इंजीनियरिंग कॉलेज की संचालक श्रीमती विनीता चौबे, सिद्धार्थ चौबे तथा प्रसिद्ध व्यंग्य कवि श्री प्रदीप चौबे भी इस अवसर पर विशेष रूप से उपस्थित थे।

लगभग दो घंटे की इस रोमांचकारी दृश्य-श्रव्य प्रस्तुति में श्री मनोज नायर ने कोरियोग्राफी का अद्‌भुत घालमेल किया है। भजनों में अंतर्निहित कथाओं, घटनाओं, प्रसंगों और आख्यानों को उन्होंने नृत्य गतियों तथा पारदर्शी अभिनय की तमाम संभावनाओं को युवा कलाकारों की प्रतिभा से अर्जित करने का सफल प्रयास किया है। संभवतः भोपाल के रंग पटल पर यह अपने किस्म का पहला और अनूठा रूपक है जिसमें कविता, संगीत, अभिनय, लयकारी और संभाषण के ज़रिये समाज से सीधे संबोधित होने का एक बेहतर सूत्र तैयार होता नज़र आया। क्षमा मालवीय ने खासतौर पर कृष्ण और राम की महिमा से जुड़े भक्ति पदों में बहुत ही सुथरे ढंग से कोरियोग्राफी का इस्तेमाल किया है। स्मिता नायर, एकता गोस्वामी, अर्चना शैलेन्द्र, स्निग्धा पाण्डे, शिव कटारिया, अनुज भाटिया गिरीश और राहुल यादव आदि की भंगिमायें कथा प्रसंगों के आध्यात्मिक अर्थ खोलती रहीं। कमल जैन की प्रकाश परिकल्पना और संचालन ने दृश्यों को उनकी यथोचित पृष्ठभूमि से आलोकित करने में सहायक रही। प्रशांत सोनी और आशीष पोद्दार के तकनीकी नियंत्रण ने पूरी प्रस्तुति को संतुलित और अनुशासी बनाये रखा। 'अंतर्लय' का संगीत पक्ष लोक की मधुरिमा और सहजता का सुनहरा ताना-बाना लिये है। इस तारतम्य में गायक-म्यूजिक कम्पोजर श्री राजू राव, उमेश तरकसवार और धर्मेश के बुनियादी भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। सुश्री उमा कोरवार, वीनस तरकसवार, संदीपा पारे तथा श्री शिव राव और कैलाश यादव की गायकी भी भजनों की मुखरता का सुरीला प्रमाण देती है। 'अंतर्लय' का साक्षी बनने भोपाल के प्रबुद्ध सृजनधर्मियों के साथ ही बड़ी तादाद में आम रसिकजन भी उपस्थित थे।

हमीं से रौशन दुनिया...

नवचेतना और बदलाव के गीत

''हमारी सारी दुनिया ना देखो आसमान हमीं से रौशन दुनिया, ना देखो आसमान।'' उम्मीद और आत्मविश्वास का पैगाम देता यह नगमा भारत भवन की अंतरंग शाला में सुनने, देखने और अपनी दुनिया को नए सिरे से सँवारने का सबक बना। रचनात्मक सरोकारों की सक्रिय संस्था **वनमाली सृजन पीठ** के अनूठे रंगमंचीय प्रयोग के दौरान नवचेतना और बदलाव के एक दर्जन से भी ज्यादा प्रेरक गीतों को विकास की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया। प्रसिद्ध कवि कथाकार और विज्ञानकर्मी संतोष चौबे द्वारा परिकल्पित इस दृश्य श्रव्य प्रस्तुति को माइम विशेषज्ञ युवा रंगकर्मी मनोज नायर ने अत्यंत पारदर्शिता से अभिनय और देह गतियों में बांधा। संगीत संयोजन संतोष कौशिक ने किया जबकि 'हमारी सारी दुनिया' शीर्षक इस रूपक को सटीक संदर्भों और विषय वस्तु के प्रभावी विवरण के साथ विनय उपाध्याय ने श्रृंखलाबद्ध प्रस्तुत किया।

स्कोप, अभिव्यक्ति, सरोकार, सूत्रधार तथा पहले पहल की साझेदारी में आईसेक्ट स्टूडियो की ओर से विकास और जनजागृति का संदेश देते हुए गीतों की संगीतमयी ऑडियो सीडी का लोकार्पण हुआ। अतिथि साहित्यकार भगवत रावत, कमला प्रसाद, आफाक अहमद, राजेश जोशी, रामप्रकाश त्रिपाठी, श्याम बहादुर नम्र और रेखा कस्तवार।

स्कोप, अभिव्यक्ति, सरोकार, सूत्रधार तथा पहले पहल की साझेदारी में सम्पन्न इस सभा के आरंभ में आईसेक्ट स्टूडियो की ओर से विकास और जनजागृति का संदेश देते हुए गीतों की संगीतमयी ऑडियो सीडी का लोकार्पण हुआ। अतिथि थे साहित्यकार भगवत रावत, कमला प्रसाद, आफाक अहमद, राजेश जोशी, रामप्रकाश त्रिपाठी, श्याम बहादुर नम्र और रेखा कस्तवार। इस अवसर पर वनमाली सृजन पीठ के अध्यक्ष संतोष चौबे ने कहा कि शिक्षा, संस्कृति, पर्यावरण, स्वास्थ्य और हमारे मौलिक अधिकारों को हाशिए पर रखकर तरक्की की इबारत नहीं गढ़ी जा सकती। यह विमर्श हमारे वेदों से लेकर हमारी आज की कविताओं में, गीतों में भी होता रहा है। समारोह में आईसेक्ट के निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी तथा अमिताभ सक्सेना ने अतिथियों का स्वागत किया।

लगभग डेढ़ घंटे की इस सम्मोहक प्रस्तुति की शुरुआत संतोष कौशिक के गीत ''नदिया नीर से भरी'' से हुई। सफदर हाशमी की प्रसिद्ध कविता ''नारी है सबला पर उसको अबला जाना'' में स्त्री शिक्षा और उसकी सृजन शक्ति के प्रति संवेदना का स्वर था। राजेश जोशी की रचना ''पढ़ना सीखो, लिखना सीखो'' सर्वशिक्षा के प्रति आगाह का इशारा थी जबकि गोपालदास नीरज की मशहूर नज्म ''लहू का रंग एक है अमीर क्या, गरीब क्या'' इंसानियत और सौहार्द्र का सनातन पैगाम था। दिलचस्प पहलू यह कि मनोज नायर ने ऐसे तमाम नगमों में दृश्य चित्रण की संभावनाएँ तलाशीं और अपने समूह के काबिल युवा कलाकारों के अभिनय में उन्हें चरितार्थ किया। कुल मिलाकर यह प्रयोग हमारी सारी दुनिया की चिंता करते हुए धरती और उस पर बसने वालों को एक खुशहाल, समृद्ध और सुखी जीवन जीने के प्रति जागृति का संचार करने की पहल थी। इस मंचन को कमल जैन की प्रकाश परिकल्पना और संचालन ने नया प्रभाव दिया जबकि नृत्य संयोजन क्षमा मालवीय का था। स्मिता नायर, अर्चना शैलेन्द्र, वसीम खान, शिव कटारिया, एकता गोस्वामी, अनिरुद्ध, अवनी खरे, गमन श्रीवास्तव, आलोक तायड़े आदि ने दृश्य संयोजन में शिरकत की। संगीत समूह में राजू राव, महेश नीरज, वीरेन्द्र कोरे, आनंद भट्टाचार्य, उमा कोरवार, शिवराव, खुश्बू, कैलाश यादव, संदीप तथा तृप्ति शामिल थे। तकनीकी सहयोग आशीष पोतदार और प्रशांत सोनी ने किया।

परंपरा की खनक

छोटी सी गाड़ी लुड़कती जाय... बाई संजा तू एक दूर बसे... संजा का सासर सी हत्थी बी आयो घोड़ो बी आयो... करो संजा की आरती...। मानव संग्रहालय की एकांत वादियों में निमाड़ी लोक गीतों की इन कड़ियों को आलोचना मांगरोले और उनकी सखियों ने पारंपरिक साज-बाज के साथ गुनगुनाया तो माहौल में बोली की सौंधी-सुरमई छवियों का सम्मोहन छा गया। परंपरा की इस खनकती आवाज़ के साथ जुड़ी थीं निमाड़ की किशोरी-कन्याओं की मासूम मनुहारें, यादें, सपने और ज़िदें। कुल मिलाकर जीवन, प्रकृति और संस्कृति की संगीतमयी बानगी लिये थी संजा गायन की यह सभा।

धरोहर के धूसर होते रंगों को सहेजने की कलात्मक पहल के चलते इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय ने पितृ पक्ष के अवसर पर निमाड़ में मनाए जाने वाले 'संजा पर्व' को समग्रता में साकार किया है। खंडवा से आयीं सुपरिचित लोक गायिका श्रीमती आलोचना मांगरोले ने न केवल संग्रहालय की दीवारों पर राजधानी की कलाकारों के साथ मिलकर संजा का चित्रण किया बल्कि संजा की कहानी को गीतों की जुबानी पेशकर निमाड़ की सदियों से चली आ रही मधुमय संस्कृति की धड़कनों को फिर से जगा दिया। लगभग डेढ़ घण्टे की इस प्रस्तुति को कला समीक्षक-उद्घोषक श्री विनय उपाध्याय ने प्रभावी शैली से कथा-सूत्रों में पिरोया। मटियारी खुश्बू से महकती इस महफिल का लुत्फ लेने भोपाल में बसे निमाड़ वासियों के साथ ही अन्य संगीत प्रेमी बड़ी तादाद में इकट्ठा हुए। आलोचनाजी के साथ गायन समूह में सुलोचना सोहनी, सुषमा साध, आशा उपाध्याय तथा संदीपा पारे के अलावा दो किशोरी गायिकायें रानी साध और सौम्या मांगरोले भी शामिल थीं। लय-ताल का ताना बाना तैयार किया श्रीकृष्ण उपाध्याय (हारमोनियम), मनोज जोशी (तबला), निलेश लोने (ढोलक), वीरेन्द्र कोरे (बांसुरी) तथा महेश मलिक (बांसुरी) ने।

संजा लोक रुपक की शुरुआत जैसे ही ''छोटी सी गाड़ी लुड़कती जाय, ओऽऽम बईण संजा बठती जाय'' गीत से हुई तो सभागार तालियों से गूंज उठा। संजा के आगमन और उसके रूप-श्रृंगार के वर्णन के बाद सहेलियों के संग हँसी-ठिठोली, उसके विवाह की तैयारियाँ, बारात की रौनक, विदाई की कसक और अंत में लोक देवी की मान्यता के अनुसार संजा की आरती प्रस्तुत की गई। घटनाओं-प्रसंगों का मन छूता वर्णन और मीठी धुनों का रुहानी संगीत सुनकर श्रोता कई बार भावुक हो उठे।

संजा की ऑडियो सीडी

भोपाल स्थित मानव संग्रहालय में आयोजित **संजा पर्व** की सभा में आए श्रोताओं को संजा गीतों की संगीतमयी ऑडियो सीडी की अनूठी सौगात मिली। आईसेक्ट स्टुडियो भोपाल ने आलोचना मांगरोले द्वारा चुने हुए नौ संजा गीतों को उन्हीं की आवाज में रेकार्ड कर यह अलबम तैयार किया है। आईसेक्ट के महानिदेशक-संस्कृतिकर्मी संतोष चौबे प्रसिद्ध लोक संस्कृतिकर्मी वसंत निरगुणे तथा मानव संग्रहालय के क्यूरेटर अशोक तिवारी ने **'म्हारी संजा फूली वो'** शीर्षक सीडी का लोकार्पण किया। इन गीतों को मौलिक धुनों के साथ ध्वनिबद्ध किया है संगीतकार संतोष कौशिक ने। आरंभिक भूमिका कला समीक्षक विनय उपाध्याय के स्वरों में है जिसमें संजा और उसके साथ जुड़ी लोक गाथा तथा निमाड़ के संगीत पर मार्मिक टिप्पणी की गई है। प्रस्तुति संयोजन प्रशांत सोनी तथा आशीष पोतदार ने किया है। कोरस में संदीपा पारे, सुषमा साध और सुलोचना मांगरोले ने हिस्सा लिया है।

'म्हारी संजा फूली वो' : आईसेक्ट स्टुडियो भोपाल ने आलोचना मांगरोले द्वारा चुने हुए नौ निमाडी संजा गीतों का सी.डी. अलबम तैयार किया। लोकार्पण अवसर पर मानव संग्रहालय भोपाल में लोक गायन करती सुलोचना सोहनी, सुषमा साध, आशा उपाध्याय तथा संदीपा पारे के अलावा दो किशोरी गायिकायें रानी साध और सौम्या मांगरोले।

परम्परा के आंगन में हिलोरे लेती ब्रज की होरी और मैनपुरी के फाग गीतों की मीठी मादक स्वर लहरियों ने मानव संग्रहालय (भोपाल) की वादियों में फागुनी रंग घोल दिए। **वनमाली सृजन पीठ** और **आईसेक्ट स्टुडियो** द्वारा संजोई दृश्य-श्रव्य प्रस्तुति 'होरी हो ब्रजराज' का उल्लास कुछ यूँ परवान चढ़ा कि वीथी संकुल सभागार में उमड़े रसिकों ने भी सुरताल के ताने-बाने की इस थिरकन से देर रात तक अपने रुहानी तार जोड़े रखे। लोक संस्कृति की मधुमय धड़कनों को सुनने-गुनने की यह अनूठी पेशकश रंगपंचमी की पूर्व सांझ भोपालवासियों के लिए मानव संग्रहालय की ओर से सौहार्द समरसता और मिलन की आत्मीयता का रंग बिरंगी तोहफा था।

लोक स्मृति और परम्परा की थाती से प्रत्यक्ष होने की उत्सवी कड़ी में होरी की यह विशेष सभा संग्रहालय ने आयोजित की। इस अवसर पर वरिष्ठ कवि-कथाकार और सीवी रमन वि.वि. के कुलाधिपति संतोष चौबे, मानव संग्रहालय के प्रभारी निदेशक विकास भट्ट तथा अन्य अतिथियों ने मैनपुरी की होलियों पर केन्द्रित ऑडियो सीडी 'बरजोरी करे रंग डारी' और 'कन्हैया मोसो खेरे होरी' का विमोचन किया। ये सीडी आईसेक्ट स्टूडियो ने तैयार की है, परम्परा की धुनों और गीतों को नए संगीत प्रभावों के साथ प्रस्तुत किया है संतोष कौशिक और राजू राव ने। इस रुपक को सटीक संदर्भों के साथ प्रस्तुत किया कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने।

मैनपुरी की होलियों पर केन्द्रित ऑडियो सीडी 'बरजोरी करे रंग डारी' और 'कन्हैया मोसो खेरे होरी' का विमोचन

सभा के पहले चरण में उत्तर प्रदेश के मैनपुरी क्षेत्र की होलियों का गायन संतोष कौशिक और उनकी मंडली संदीपा पारे, तृप्ति बिल्लोरे, कैलाश यादव ने किया। लोक धुनों और शास्त्रीय संगीत के प्रभावों से मिलकर तैयार हुई इन होरी गीतों ने समाँ बांध दिया। दूसरी पेशकश थी रंगकर्मी मनोज नायर और क्षमा मालवीय के नृत्य अभिनय की कल्पना से गढ़ी दृश्य श्रव्य प्रस्तुति होरी हो ब्रजराज। परंपरा के बारह गीतों की लड़ियों को कलाकारों ने खूबसूरती से दृश्यमान किया। कमल जैन के प्रकाश संयोजन ने वृन्दावन के कृष्ण राधा और गोपियों की घटनाओं को जीवंत कर दिया।

उत्तर प्रदेश के मैनपुरी क्षेत्र की होलियों का गायन संतोष कौशिक और उनकी मंडली संदीपा पारे, तृप्ति बिल्लोरे, कैलाश यादव ने किया।

अपार प्रेम और उम्मीद भरा कविता 'कर्म'

भोपाल स्थित बहुकला केन्द्र भारत भवन में कवि संतोष चौबे के दो कविता संग्रहों 'कोना धरती का' तथा 'इस अ-कवि समय में' के लोकार्पण अवसर पर अरुनेश नीरन, मनोहर वर्मा, रमेश दवे, सुरेश पंडित, कवि-नाटककार राजेश जोशी, संतोष चौबे, रामप्रकाश त्रिपाठी।

नवउदारवादी संस्कृति के इस दौर में जब कविता के हाशिए पर चले जाने का भ्रम फैल रहा है ऐसे में संतोष चौबे की कविता जीवन के जटिल प्रश्नों के सहज उत्तर खोजने का जतन करती हैं। विचारधारा के सीमित दायरे से निकलकर वे इस संसार को समग्रता में देखने तथा जीवन के प्रति अपार प्रेम और उम्मीद का कविता कर्म करते दिखाई देते हैं।

संतोष चौबे के कविता संग्रह 'कोना धरती का' और 'इस अ-कवि समय में' लोकार्पित

इस आशय के उद्‌गार भोपाल स्थित बहुकला केन्द्र भारत भवन के अंतरंग सभागार में प्रसिद्ध कवि संतोष चौबे के दो कविता संग्रहों 'कोना धरती का' तथा 'इस अ-कवि समय में' का लोकार्पण करते हुए आलोचकों ने व्यक्त किए। 25 एवं 26 फरवरी 2010 के दरम्यान वनमाली सृजन पीठ द्वारा सरोकार और पहले पहल की साझेदारी में हुआ यह समारोह कविता कृतियों के बहाने एक सार्थक साहित्यिक विमर्श और सृजन संवाद साबित हुआ। मुख्य अतिथि के रूप में राजस्थान के वरिष्ठ आलोचक सुरेश पंडित उपस्थित थे। अध्यक्षता ख्यातनाम कवि-नाटककार राजेश जोशी ने की। अन्य वक्ताओं में मनोहर वर्मा, रमेश दवे, रामप्रकाश त्रिपाठी तथा अरुनेश नीरन ने चौबे की लोकार्पित पुस्तकों पर अपने समीक्षात्मक वक्तव्य दिए। इस मौके पर चौबे ने संग्रह की कविताओं 'जीवन वृत्त', 'अम्मा का रेडियो', 'भूत बंगला' तथा 'इस अ-कवि समय में में' का पाठ करते हुए इन रचनाओं की पीठिका पर प्रकाश डाला। समारोह का संचालन श्री विनय उपाध्याय तथा बलराम गुमास्ता ने किया। श्री मुकेश वर्मा, महेन्द्र गगन, रेखा कस्तवार आदि ने अतिथियों का स्वागत किया।

सुरेश पंडित ने चौबे की कविताओं को सहज बुनावट की आत्मीय और अर्थगर्भी रचना बताया। अरुणेश ने कहा कि दुलिया के तमाम जंजालों को समेटते हुए संतोषजी अंततः कविताओं में जीवन के प्रति अदम्य प्रेम की स्थापना करते हैं। राजेश जोशी के अनुसार दोनों संग्रह कविता की शक्ल में अपने समय और समाज

रचना पाठ : कवि चौबे

की तटस्थ आलोचना ही हैं। जबकि रामप्रकाश त्रिपाठी ने कहा कि क्रांति की हड़बड़ी और आवेश की बजाय इन कविताओं में सहज सपनीली तरलता है। मनोहर वर्मा और रमेश दवे ने भी दोनों विमोचित संग्रहों के मद्देनजर संतोष चौबे के कृति व्यक्तित्व के पहलुओं की चर्चा की। अंत में आभार श्री मुकेश वर्मा ने व्यक्त किया।

रंगभूमि पर रौशन हुई कविताएँ

श्री संतोष चौबे के नव प्रकाशित संग्रहों के निमित्त आयोजित समारोह के दूसरे दिन रंगमंच की चौखट पर कविता और कला की जुगलबंदी में बजते विचार की आहटों को सुनने-देखने और गुनने का एक अनूठा अवसर भोपाल के साहित्य प्रेमियों को मिला। श्री चौबे की करीब दो दर्जन चुनिंदा कविताओं की पाठ प्रस्तुति भारत भवन के प्रेक्षागृह में हुई तो कथ्य, भाषा, शिल्प और कविताओं का मिजाज अपनी पूरी आंतरिक भाव छवियों के साथ मुखर हो उठा। इस प्रयोग को रंगभूमि पर साकार करने युवा रंगकर्मी संजय मेहता अपने समूह 'रंगशीर्ष' के कलाकारों के साथ पेश आए।

कविता के पाठ की परंपरा हालाँकि नई बात नहीं लेकिन जब कविताओं का मिजाज जीवन की विविधताओं के मखमली और खुरदरे अहसासों को समेटे हो तो उन्हें मंच पर संवाद तथा अभिनय के ज़रिए प्रकट करने की चुनौती होती है। संजय मेहता ने चयन और मंचन दोनों स्तरों पर सम्प्रेषण की कसौटी पर खरा उतरने की कोशिश की। यह संतोष चौबे की बेशुमार कविताओं का एक चयनित गुलदस्ता था जिससे महकती खुशबुओं में दर्शकों ने जैसे अपने ही भूले बिसरे या भोगे जा रहे यथार्थ की पड़ताल की। गौरतलब है कि इस मंचन से एक दिन पूर्व ही श्री चौबे के काव्य संग्रह 'कोना धरती का' तथा 'इस अ-कवि समय में' लोकार्पित हुए। इन्हीं संग्रहों से संजय ने काम के क्षण, जूता, गर्वीली माँ, वार्तालाप, प्रेम दीपक, क्रांतिकारी, बदलेगा समय, बस थोड़ा एकान्त सहित उन रचनाओं को उद्धृत किया जिनमें भौतिक जीवन की तमाम जद्दोजहद से घिरे मनुष्य को अंततः गहरे प्रेम, विश्वास और विजय की राह दिखाई देती है। इन कविताओं के भीतर सहज संवाद है, नाटकीयता है, कथात्मक प्रवाह है जो विचार का छोर पकड़ने में मदद करता है। मंचन से पूर्व कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने कविता और रंगमंच की रचनात्मक नातेदारी पर वक्तव्य दिया। कवि श्री चौबे ने संजय मेहता का स्वागत करते हुए इस प्रयोग को अपने लिए एक अनोखी उपलब्धि बताया। संजय मेहता ने मंचन के उपरांत श्री चौबे की कविताओं को पाठ के लिए एक आध्यात्मिक अनुभव बताया। उन्होंने कहा कि यूँ हर कविता विषय और देशकाल की भिन्नता लिए होती है लेकिन कुल मिलाकर यह पाठ एक बड़े अर्थ विन्यास को समेटने की रोचक प्रक्रिया बना सका। वरिष्ठ आलोचक प्रो. कमला प्रसाद, श्री सुरेश पंडित, रंगकर्मी श्री जावेद जैदी और राकेश सेठी ने श्री मेहता को गुलदस्ता भेंट करते हुए साधुवाद दिया।

पाठ प्रस्तुति में राहुल शर्मा, प्रदीप अहिरवार, विशाल चतुर्वेदी, तनुज व्यास, गगन टेटवाल, दीपक शर्मा, शशांक बावरे, हेमलता महावर, मोनिका इंगले, प्रियंका सिंह ने वाचिक अभिनय किया। रामबाबू की प्रकाश परिकल्पना ने कविताओं को भाव अनुरूप रंग परिवेश दिया। संगीत संचालन रवि राव ने किया।

किताब के बहाने खरी-खरी : कथाकार ममता कालिया

नए वक्त का स्त्री विमर्श

'हिन्दी आलोचना दोगली हो गई है। प्रपंचकारी उसकी आँख 'शत्रुलोचन' 'मित्रलोचन' से ग्रस्त है। इस पूर्वाग्रही परिवेश में 'किरदार जिंदा है' जैसी नया विमर्श पैदा करती किताब का स्वागत किया जाना चाहिए।'' हिन्दी की शीर्ष कथाकार ममता कालिया इस बेबाकी के साथ भोपाल के साहित्य परिसर में नमूदार हुई। उनका यह प्रवास चर्चित लेखिका रेखा कस्तवार की हाल छपकर आई पुस्तक 'किरदार जिंदा है' के लोकार्पण प्रसंग का निमित्त बना। ममताजी ने खुलकर कहा कि आलोचना के पक्षपाती व्यवहार के चलते कई महत्वपूर्ण रचनाएँ पाठकों से यथोचित संवाद नहीं कर पाती हैं। आलोचना की आड़ में बेवजह तर्क गढ़ते हुए कई बार रचना की छवियों को बोझिल बनाने की साजिशें रची जाती हैं।

गौरतलब है कि रेखा कस्तवार एक हिन्दी अखबार के महिला परिशिष्ठ में 'किरदार जिंदा है' शीर्षक से नियमित लिखती रहीं। उनकी इस पहल ने विचार का नया आयाम रचा, जिसे आम ओ खास पाठकों का आत्मीय प्रतिसाद मिला। लोकार्पित कृति में शामिल स्त्री पात्र पूरी तार्किकता से हमारे समय का जरूरी विमर्श करते हैं।

रेखा कस्तवार की किताब 'किरदार जिंदा है' लोकार्पित

'वनमाली सृजनपीठ', 'पहले पहल' तथा 'सरोकार' की साझेदारी में स्वराज संस्थान में हुए आयोजन के मुख्य अतिथि जाने माने अधिवक्ता तथा महिला एवं बाल कानून विशेषज्ञ अरविंद जैन थे। उनके अलावा 'वनमाली' के अध्यक्ष कवि-कथाकार संतोष चौबे तथा समाजसेवी विवेक हिरदे ने भी विचार रखे।

चौबे की राय में किताब जितनी सहज है, उतनी ही कठिन भी। विभिन्न पात्रों के जरिए बहुत सी वैचारिक आवाजाही करती है। स्त्री संताप के कई आयाम हमें प्रश्नाकुल करते हैं। हालाँकि कृति में 'मील के पत्थर' बहुत ज्यादा परिभाषित नहीं हैं, अतः उन्हें तलाशना कठिन है। अरविंद जैन ने कहा कि बहुत से ऐसे सवाल

हैं जिनके जवाब इतने सीधे सादे नहीं हैं जो 'किरदार जिंदा है' में खड़े हैं। बीते पचास सालों का जिक्र करते हुए जैन ने कहा इस दौरान स्त्री ने हर क्षेत्र में जितनी प्रगति की है उतना ही उस पर पितृसत्ता का दमन बढ़ा है। शिक्षा, अधिकार व कानून की लाख दलीलों के बावजूद गांवों में स्त्रियों पर पशुवत क्रूरताएं जारी हैं।

'किरदार जिंदा है' के सजग पाठक रहे विवेक ने कहा अब भी कई किरदार ऐसे हैं जो रेखा से गहरे विमर्श की दरकार रखते हैं ताकि वे समाज के दु:ख दर्द को आत्मसात कर सकें।

अपनी बात रखते हुए रेखा ने विमोचित कृति को सृजनात्मक आलोचना की पुस्तक बताया। साथ ही स्वीकारा कि स्त्री की सिसकियाँ और चीखें सदियों पुरानी हैं। उन्हें शब्द बाद में मिले। मैंने मिले हुए शब्दों में से वक्त को तलाशा है। वक्त के साथ प्रश्न नहीं बदले हैं, फोकस बदला है, रचनाकार की दृष्टि बदली है। कला समीक्षक व समारोह के सूत्रधार विनय उपाध्याय ने कहा कि स्त्री विमर्श नया नहीं है, लेकिन बार बार नई प्रतिध्वनियाँ उकेरता है। यह कृति इसी सार्थकता का उदाहरण है। नाट्य संस्था 'रंगशीर्ष' के बैनर तले रंगकर्मी संजय मेहता के संयोजन में कृति में शामिल मंटो की बहुचर्चित कहानी 'लाइसेंस' तथा उससे जिरह करता रेखा का पत्र कलाकारों ने पढ़ा। 'पहले पहल' के सम्पादक कवि महेन्द्र गगन व 'सरोकार' के संचालक कथाकार मुकेश वर्मा ने मंचासीनों का स्वागत किया। किताब की आवरण सज्जाकार पारुल कस्तवार तथा किरदारों का रेखांकन करने वाले कार्टूनिस्ट देवेन्द्र शर्मा का अभिनंदन किया गया।

-वसंत सकरगाए

हर सच्चे कलाकार के जीवन में संघर्ष आता ही है। मेरी नियति में भी शूल और फूल के चुभते-चहकते अहसास शुमार रहे हैं लेकिन मैंने अविचल भाव से रंगमंच और लेखन की राहों पर चलने की ताकत जुटाई। इसलिए कह सकता हूँ कि नाटक मेरे लिए एक धर्म है, शौक है, जुनून है, धंधा नहीं। इसके साथ मेरा खून का रिश्ता बन गया है।

नाटक धर्म है, धंधा नहीं

इस दो टूक वक्तव्य के साथ प्रख्यात नाट्य निर्देशक श्री अलखनंदन भोपाल के रंग प्रेमियों और अपने चाहने वालों के रूबरू थे। नाट्य समूह 'रंग विदूषक' तथा सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की नियमित व्याख्यान श्रृंखला 'छवि संवाद' की छटवीं कड़ी के अंतर्गत अलखनंदन ने अपना आत्मकथ्य प्रस्तुत किया। लगभग चार दशकों के विस्तार में फैले अपने नाट्य सृजन और प्रयोग के जुड़े अनुभव साझा करते हुए उन्होंने कहा कि यह जानते हुए भी कि नाटक एक निर्धन माध्यम है, मैंने उसे जीवन का लक्ष्य बनाया। कई नौकरियाँ कीं, फिल्मी संसार से जुड़ने का अवसर भी आया लेकिन अपनी अभिव्यक्ति और आनंद का सबसे उपयुक्त और सुविधाजनक माध्यम मुझे नाटक ही लगा। चंदा बेड़नी, जगर मगर, मोटेराम का सत्याग्रह, स्वांग शकुन्तला, भगवद्दजुकम और चारपाई जैसे लोकप्रिय नाटकों का जिक्र करते हुए श्री अलखनंदन ने कहा कि रचना के स्तर पर, प्रयोग के स्तर पर हर नाटक मेरे लिए तकलीफदेह अनुभव रहा है। इस अर्थ में कि मैंने कभी भी बंधे बंधाए फ्रेम में इस विधा को स्वीकार नहीं किया। एक सवाल के जवाब में उन्होंने खुलासा किया कि अभिनय को मैं नाटक की संपूर्ण पेशकश में अर्जित करने की कोशिश करता हूँ सिर्फ अभिनेता तक इस आयाम का अर्थ सिमटा नहीं है। मैंने संगीत, रंग विन्यास, वेशभूषा, मंच, उपकरण आदि को नाटक की अभिव्यक्ति की शक्ति के बतौर गंभीरता से देखना चाहा है।

शिखर सम्मान से विभूषित और भारत भवन रंगमंच के प्रभारी रह चुके नाट्य समूह नट बुंदेले के संचालक श्री अलखनंदन ने भोपाल के तीन दशकों के दौरान रंग गतिविधियों में आए आरोह-अवरोह पर भी अपनी साफगोई बयान की। कहा कि रंगमंच बनने तक और उसके रहते वस्तु शैली, जुनून तथा अध्ययन को लेकर जो सरगर्मी थी आज उसका सर्वथा अभाव है। रंगमंच आज मुझे शॉटकट नजर आता है। उसके साथ राजनीतिक जोड़ तोड़ शुरू हो गई है। इस अवसर पर रंगकर्मी उदय शहाणे, फरीद बज्मी, सतीश मेहता, नीति श्रीवास्तव, बिशना चौहान सहित अनेक सृजनधर्मी उपस्थित थे।

अनुरोध

रंग संवाद

के आगामी अंक हेतु

साहित्यिक, सांस्कृतिक, रंगमंचीय
गतिविधियों की सचित्र रपटें तथा आलेख आमंत्रित हैं।

वनमाली स्मृति सृजनपीठ
22, ई 7, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-16
फोन : +91 755 2423806
ई-मेल : vanmalisrijanpeeth@gmail.com

भूला नहीं हूँ अपनी बुनियाद

मेरी कामयाबी की कहानी हवाओं में तैरकर आसमान छूती हसरतों का नाम नहीं है। मैंने संघर्ष की खुरदुरी जमीन पर खड़े होकर अपने सपनों को सींचा है। यही वजह है कि मुंबई के सिने-संसार की चकाचौंध, ग्लेमर और शोहरत के बीच खड़ा होकर भी मेरी बुनियाद हिली नहीं है। मैं अपनी सफलता का श्रेय माँ-पिता, दोस्त, गुरु और किस्मत को देता हूँ। भोपाल के उस थिएटर को भी जिसकी सीखों और बगैर शायद मैं अधूरा रह जाता।

सुप्रसिद्ध रंगकर्मी और फिल्म कला निर्देशक जयंत देशमुख ने यह भावुक उद्‌गार भोपाल के कला प्रेमियों से साझा किया। आत्मकथा व्याख्यानमाला 'छवि संवाद' की चौथी कड़ी के तहत अपने जीवन-संघर्ष और सफलता की दास्तान सुना रहे थे। श्यामला हिल्स स्थित रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप सभागार में हुए आत्मीय समागम में श्री देशमुख, प्रसिद्ध कवि-नाटककार श्री राजेश जोशी तथा प्रख्यात कोरियोग्राफर श्रीमती गुलवर्द्धन ने 'कला समय' के नवीन अंक का लोकार्पण भी किया। आरंभ में कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने जयंत देशमुख के सृजनात्मक पहलुओं पर प्रकाश डाला।

व्याख्यान की शुरुआत करते हुए जयंत ने कहा कि मैं उन भाग्यशाली लोगों में शामिल हूँ जिन पर उनके माता-पिता अपनी अपेक्षाएँ नहीं लादते। परिवार ने बचपन से ही मेरी रचनात्मक रुचियों को फलने-फूलने का मौका दिया। यह प्रोत्साहन और खुलापन मेरे सपनों को कामयाबी में बदलता रहा। जयंत ने भोपाल के भारत भवन में मूर्धन्य रंगकर्मी स्व. ब.व. कारंत से मली थिएटर की बुनियाद सीखों को जीवन-मंत्र बतया। कहा कि अभावग्रस्त बचपन तथा नाटक के परदे के पीछे का अनुभव आज सिनेमा के बड़े केनवास पर काम करते हुए मेरा संबल बना हुआ है। जयंत ने बताया कि रंगमंच पर अभिनय की ठसक के साथ खड़े होने का मौका मिला तो झाड़ू-पोछा लगाने में भी शर्म नहीं की। यही कारण है कि सिने-दुनिया के बड़े निर्माता-निर्देशक और अभिनेताओं के बीच काम करते हुए मेरी सादगी-स्वाभिमान और मौलिकता कभी विचलित नहीं हुए।

देशमुख ने कहा कि सिनेमा जीवन के धूप-छाँही पहलुओं को संजोने की कला है इसे चित्रित करने के लिए जब मैं फिल्मों के सेट पर काम करता हूँ तो मेरे व्यापक अनुभवों से तैयार हुआ नजरिया मदद करता है। मैं एक गरीब फटेहाल आदमी की जिंदगी से लेकर अंबानी जैसे अरबपती की तस्वीर भी गढ़ सकता हूँ। आज दर्जनों फिल्में मेरे सिनेमाई कैरियर के साथ जुड़ गई हैं। रोज नई फिल्मों तथा टी.वी. धारावाहिकों के कला निर्देशन के प्रस्ताव आते हैं। बावजूद इसके थिएटर की कसक बाकी है। जयंत ने खुलासा किया कि 'मृत्युंजय' जैसा ही कोई बड़ा व्यवस्थित और क्रिएटिव नाट्य प्रयोग करने की इच्छा है। मैं जाँचना चाहता हूँ कि आखिर सिनेमा का अनुभव मेरे रंगकर्म को किस तरह प्रभावित कर पाया है।

राजेश जोशी की पाँच कहानियाँ

कहानियों को कहने-सुनने और दृश्य के रोचक आयामों में बंधकर देखने का एक नया फलसफा भोपाल के नाट्य समूह रंग विदूषक के कलाकारों ने तैयार किया। प्रसिद्ध कथाकार-कवि और नाटककार राजेश जोशी के संग्रह की पाँच कहानियों को वरिष्ठ नाट्य निर्देशक बंसी कौल ने चुना और रंगकर्मी उदय शहाणे के निर्देशन में उन्हें युवा कलाकारों ने अभिनय परक संवादों से जीवंत किया। रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप के परिसर में हुआ यह प्रयोग पाठ परंपरा की एक नई शैली की मिसाल कहा जा सकता है।

अपने समय के मानवीय चरित्र और बनती-बिगड़ती परिस्थितियों के जरिए निष्कर्षों की तलाश करती राजेश जोशी की कहानियाँ थीं- नई आँख, नाम क्या है उर्फ अंडे चोर, बगल की सीट, हँसी और सींग। ये कहानियाँ जोशी के संकलन 'कपिल का पेड़' से चयन कर बंसी कौल ने पाठ के लिए परिकल्पित की। इस नरेशन की तासीर किताबी सीमाओं से अलग उन्हें किरदारों की जुबानी अलग-अलग मूड और स्थान के दायरे में बंधकर सुनने देखने की थी। हर्ष दौण्ड, संजय श्रीवास्तव, प्रमोद शर्मा, वसीम खान, घनश्याम गुर्जर, नीति श्रीवास्तव और कीर्ति सिंह ने कहानी के साथ हर संभव वाचिक अंतरंगता बनाने का प्रयास कर उसके वैचारिक प्रभाव खोलने का हुनर दिखाया। विषय और भावों के स्तर पर कहानियों का लिंक नहीं था लेकिन अलग-अलग कथानकों के बावजूद इनसे दर्शक-श्रोताओं ने एक प्रीतिकर रिश्ता बनाया। पाप-पुण्य की नियति को नए सिरे से परिभाषित करती कहानी 'आँख', एक विक्षिप्त महिला की बेचारगी बयान करती 'नाम क्या है...' और लंबी कथा 'पोस्ट मेन' में मध्यमवर्गीय त्रासदी के कारुणिक चित्रण को हमारे समय की एक हकीकत के बतौर राजेश जोशी ने पेश किया है। पृष्ठभूमि के अनुकूल फरीद बजमी और सप्तरथी ने प्रकाश के प्रभाव कथा-पाठ के दौरान किए।

जीवन दर्शन की भूमि है रंगमंच

मुंबई की कला मंडी में अभिनेता, अमूमन साबून-तेल के विज्ञापन बाजार का एजेंट बनकर रह जाता है। वहाँ पैसा और शोहरत तो मिल सकते हैं पर जिंदगी की फिलासॉफी को जीने का लुत्फ नहीं है। रंगमंच बेसाख्ता समर्पण की मांग करता है पर स्वाभिमान से जीने और अपने फन और शख्सियत को सँवारने की यही मुकम्मल जगह है।

लगभग तीन दशकों की रंग साधना और तजुर्बों के हवाले से अभिनेता और नाट्य निर्देशक आलोक चटर्जी अपना यह सच बयां करने भोपाल की कला बिरादरी से पेश आए। श्यामला पहाड़ी स्थित रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप के सभागार में उन्हें आत्मकथात्मक व्याख्यान देने आमंत्रित किया। आयोजन की यह पहली कड़ी थी। मकसद यह कि सृजन की विभिन्न विधाओं में लगातार सक्रिय और प्रतिबद्ध विभूतियाँ अपने संघर्ष और सफलताओं की दास्तां खुद की जुबानी खोलें। आलोक उन विलक्षण रंगकर्मियों में शुमार हैं जिन्होंने नाट्य विधा को समग्रता में साधा है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नई दिल्ली के इस स्वर्ण पदक प्राप्त स्नातक ने सौ से भी ज्यादा नाटकों में अभिनय किया है और पचास के करीब प्रस्तुतियों का मंचन उनके निर्देशन में हुआ है भारत भवन रंगमंडल के वे वरिष्ठ अभिनेता रह चुके हैं।

जबलपुर (म.प्र.) के इस रंग पथिक ने कर्मभूमि भोपाल को सौभाग्य स्थली की संज्ञा देते हुए कहा कि इस शहर ने ब.व. कारंत, अलखनंदन और बंसी कौल जैसे नाट्य गुरुओं से मुझे रंग कला के बुनियादी पाठ पढ़ने का अवसर दिया। यहाँ संघर्ष किया, यहाँ के रंगमंच पर अभिनय को रोशनी मिली, अपने को तराशा, सफलताओं ने रोमांचित किया और इसी शहर ने प्यार, पत्नी और गृहस्थी की सौगातें दीं। आलोक ने स्वयं को भाग्यशाली बताया, कहा कि छोटी उम्र में ही मुझे आला दर्जे के रंगकर्मियों को एक निश्चित दिशा देने तथा भविष्य गढ़ने की राहें साफ हो गईं। मेरी नसों में बसी थिएटर की हिलोरें कभी मंद नहीं पड़ीं। बेशक निजी जीवन में नाटक कई बार बाधा बना। कई सामाजिक अवसरों से मुँह मोड़ा। अनथक परिश्रम से गुजरना पड़ा। आँखों से आँसू झरे तो मुस्कान के फूल भी चटखते रहे।

आलोक ने खुलासा किया कि रंगमंच व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की भूमि है। यह कुंठाओं से मुक्त रहना सिखाती हैं। स्वाभिमान और आत्मदर्शन की संभावना इसी पटल पर खिलखिलाती है। एक सवाल के जवाब में इस मुखर अभिनेता ने फरमाया कि मुंबई जाकर सिनेमा टी.वी. के साँचे में किस्मत आजमाना मुझे कभी रास नहीं आया। वहाँ की कला मंडी में बेशुमार अभिनेता विज्ञापन बाजार के एजेंट गैरज़रूरी साबित होते हैं। रंगमंच पर आदमी अपनी हर साइज के साथ सदा खड़ा रह सकता है।

आरंभ में रंगकर्मी उदय शहाणे ने 'छवि संवाद' का मन्तव्य उजागर किया। विनय उपाध्याय ने आलोक की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। गुलवर्द्धन, सतीश मेहता, रामप्रकाश त्रिपाठी, कमल जैन, राजेश भदौरिया, नीति श्रीवास्तव, बद्र वास्ती, फरीद बज़मी, भँवरलाल श्रीवास ने संवाद में हिस्सेदारी की। इस मौके पर आलोक की जीवन संगिनी-रंगकर्मी शोभा चटर्जी भी उपस्थित थीं।